महर्षि दयानन्द

लेखक एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2014
प्रतियाँ : 1000

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11, पंचकूला
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. 94683 40497**
मुद्रक : यू०आर०बी० प्रिंटिंग प्रैस, शैड नं 2 रतपुर कॉलोनी, पिंजौर

भूमिका

मेरी प्रिय आत्माओ! किसी देश की सबसे बड़ी सम्पदा महापुरुष एवं धार्मिक ग्रंथ होते हैं। इन्हीं से जीवन, जगत् सुधरता, संभलता एवं आगे बढ़ता है। प्रत्येक युग में महापुरुष होते रहते हैं। जब हम इतिहास के पन्नों को उलट-पलट कर देखते हैं तो प्रतीत होता हे कि हमारे राष्ट्र में अनेक महापुरुष हुये जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, योगिराज श्रीकृष्ण, भीष्मपितामह, आदिशंकराचार्य, गुरुनानकदेव जी आदि। परन्तु महर्षि इन सब से निराले महापुरुष थे। वस्तुतः वे सत्य, त्याग, तपस्या की साक्षात् प्रतिमा थे। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों पर प्रखर प्रहार किया और मानवता के कल्याण के लिये आर्यसमाज की स्थापना की।

मैं विभिन्न लेखकों द्वारा रचित जीवनियों का गंभीर अध्ययन एवं अनुशीलन करने के उपरांत आपकी सेवा में उनकी संक्षिप्त जीवनी प्रस्तुत कर रहा हूँ। लीजिए आप भी इस रुहानी गुलदस्ते रूपी महर्षि दयानंद की संक्षिप्त जीवनी के फूलों को सूंघिये और झूम-झूम कर आनंद विभोर हो जाइए। प्रस्तुत पुस्तक को मैंने सच्ची लगन एवं कड़ी मेहनत के पश्चात् लिखा है। प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री नरेन्द्र आहूजा 'विवेक' जी, डॉ. रमेश चन्द्र बावा जी, सत्यपाल मोदी जी, रोशन लाल अग्रवाल जी आदि ने सहयोग प्रदान किया है। अतः इन मित्रों का स्तवन न करना मेरी कृतघ्नता होगी। विशेषतः श्री नरेन्द्र आहूजा 'विवेक' जी ने इस पुस्तक के सम्पादन में विशेष योगदान दिया हैं मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उनके बिना प्रस्तुत पुस्तक का वर्तमान रूप में संयोजन न हो पाता।

जिस अचिंत्य प्रभु की असीम अनुकम्पा से मैं अपने संकल्प को

मूर्तरूप दे सका उसका भी कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ। मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है। परन्तु संसार का प्रत्येक व्यक्ति अल्पज्ञ एवं अल्पशक्तिमान है। अतः यदि कोई भी त्रुटि रह गई हो तो पाठकगण से क्षमा चाहूँगा।

धर्म पाल कपूर

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

प्रस्तावना

वर्तमान समय में जब मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष जैसी कलुषित भावनाओं से ग्रस्त पाखंडों, अंधविश्वासों, कुरीतियों के गहरे कोहरे में फंसा अपनी स्थिति देख पाने में भी सक्षम नहीं है। ऐसे में सत्य के पक्षधर, आर्य समाज के संस्थापक, महान् समाज सुधारक, पाखंडखंडक, युगद्रष्टा, क्रांतदर्शी, वेदोद्धारक, स्वतंत्रता संग्राम के सूत्रधार क्रांतिकारियों के प्रणेता, दलितोद्धारक, नारी शिक्षा के पक्षधर, अछूतोद्धारक महर्षि देव दयानन्द के लिए जितने विशेषण प्रयोग करें उतने ही कम हैं और शायद विशेषणों के शब्दों में बांध कर उनके महान् जीवन के विस्तार का वर्णन कर पाना संभव नहीं है। एक और विचित्र आकर्षण है देव दयानन्द के जीवन चरित्र में जितनी बार पढ़ो उतनी बार एक नया आयाम उद्घाटित होता है। हमें अपने जीवन की सभी समस्याओं के समाधान महर्षि देव दयानन्द के जीवनचरित्र में मिल जाते हैं विशेष रूप से जब सत्य के प्रकाश का आलोक होता है तो पाखंडों, अंधविश्वासों का गहन अंधकार ठीक वैसे ही दूर हो जाता है जैसे सूर्य के उदय के आभास मात्र से रात्रि का गहन अंधकार समाप्त हो जाता है।

पुस्तक के लेखक श्री धर्मपाल कपूर ने मधुमक्खी वृति से बड़े यत्न और परिश्रम के साथ देव दयानन्द के जीवन से पराग चुनकर इस अमृतमयी शहद का निर्माण किया है। यहाँ एक बात स्पष्ट कर दूं कि इस पुस्तक में महर्षि दयानन्द के जीवन चरित्र में लेखक का अपना कुछ भी नहीं है यह तो देव दयानन्द के जीवन की महानता है। पुस्तक को पढ़ते समय यह स्पष्ट दिखाई देता है कि अपनी सीमाओं में बंधा मनुष्य उस असीम जीवन को अपने शब्दों में बांध पाने में सक्षम नहीं है। अपितु अपनी अल्प बुद्धि से उस महामानव के जीवन के सभी आयामों को जानने का प्रयास मात्र करवाता है। लेखक ने देव दयानन्द के जीवन चरित्र के विभिन्न पहलुओं को गागर में सागर की

तरह इस छोटी सी पुस्तक में समेटने की छोटी सी कोशिश की है ।

चूंकि देव दयानन्द के जीवन चरित्र का लेखन पूर्व में उपलब्ध जीवन चरित्रों एवं ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर लेखक ने किया है इसलिए बेहतर होता यदि वह पाद टिप्पणी अथवा संदर्भ सूची में उन पुस्तकों का वर्णन कर देते ।

फिर भी इस पुस्तक के लेखक धर्मपाल कपूर को उनके अथक परिश्रम के लिए हार्दिक साधुवाद । यह एक बहुउपयोगी पठनीय एवं संग्रहणीय पुस्तक है । आशा है पाठक इससे लाभान्वित होंगे ।

नरेन्द्र आहूजा 'विवेक'
602 जी.एच. 53
सैक्टर 20 पंचकूला (हरियाणा)
फोन 0172-4001895
मोबाइल 0-9467608686

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1.	महर्षि दयानंद	1
2.	महार्षि दयानंद का वंशवृक्ष एवं जन्म	3
3.	महर्षि दयानंद का गृहत्याग	7
4.	महर्षि दयानंद की सत्य की खोज	12
5.	महर्षि दयानंद का 1857 ई. की क्रांति में योगदान	17
6.	महर्षि दयानंद और मथुरा पाठशाला	19
7.	महर्षि दयानंद और मुख्य शास्त्रार्थ	26
8.	महर्षि दयानंद और आर्यसमाजसंस्थापना	47
9.	महर्षि दयानंद और साहित्यसृजन	51
10.	महर्षि दयानंद और आर्यसमाज के 10 नियम	56
11.	महर्षि दयानंद और व्याख्यानमाला	59
12.	महर्षि दयानंद और राष्ट्रवाद	63
13.	महर्षि दयानंद महान् सुधारक के रूप में	65
14.	महर्षि दयानंद का हिन्दी प्रेम	66
15.	महर्षि दयानंद का अद्‌भुत क्षमादान	68
16.	महर्षि दयानंद और गोरक्षा	70
17.	महर्षि दयानंद और ब्रह्मचर्य	72
18.	महर्षि दयानंद और योग	74
19.	महर्षि दयानंद और उनकी प्रकृति	75
20.	महर्षि दयानंद का महाप्रस्थान	77
21.	महर्षि दयानंद का अंत्येष्टि संस्कार	89

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी

1. महर्षि दयानंद

मरनेवाले इस तरह मर जीनेवाले ऐसे जी ।
कुछ सबक़ दे जाय तेरी ज़िन्दगी भी मौत भी ।।
ज़िन्दगी जिन्दा दिलों में फूक दे रूहे-हयात ।
मौत ऐसे हो कहे तेरी मौत में हो ज़िन्दगी ।।

ऐसे घोरत्तम निराशा भरे अंधकार में संसार को ऐसे महामानव की आवश्यकता थी जिसमें कपिल, कणाद एवं गीता का पाण्डित्य, हनुमान एवं भीष्मपितामह का ब्रह्मचर्य, महात्माबुद्ध जैसा त्याग और वैराग्य, श्रीराम जैसी मर्यादा, श्रीकृष्ण जैसी नीतिमत्ता, पतंजलि एवं व्यास जैसी तपस्या एवं आध्यात्मिकता हो । यह केवल भारत भूमि का ही नहीं, अपितु समूची मानवता का सौभाग्य ही कहा जायेगा कि इन गुणों से विभूषित एवं अलंकृत महर्षि दयानन्द का प्राणिमात्र के कल्याण, उत्थान एवं निर्माण का अमर संदेश सुनाने के लिये भारत भूमि पर आगमन हुआ । अतः एक विद्वान् ने महर्षि दयानंद के विषय में लिखा है :--

जैसे चमकने वालों में सूर्य, हाथियों में ऐरावत, भौतिक पदार्थों में रत्न, तीर्थों में जमदाग्न्य, आदर्श पुरुषों में राम, नीतियों में चाणक्य, योगेश्वरों में कृष्ण तथा शीतल तत्वों में चन्द्रमा को निराला माना जाता है इसी प्रकार यह महापुरुष भी निराला था ।

इसीलिए एक कवि ने सत्य कहा है :--

धन्य है तुमको ऐ ऋषि तूने हमें जगा दिया ।
सो-सो के लुट रहे थे हम तूने हमें बचा दिया ।।
अंधों को आँखें मिल गई, मुर्दों में जान आ गई ।
जादू सा चला दिया, अमृत सा क्या पिला दिया ।।

कोई न कोई किसी देश की विशेषता होती है । भारतीय इतिहास के अध्ययन से प्रतीत होता है कि जब कभी इस पर विपत्तियों

के घने बादल मँडराने लगे तो इस देश की रक्षा के लिए कोई न कोई महापुरुष का प्रादुर्भाव हुआ । जैसे जब रावण के अत्याचार बढ़े तो श्रीराम ने उसका वध करके समाज में शांति स्थापित की । इसी प्रकार जब-जब कंस के अत्याचार बढ़े तो श्रीकृष्ण ने उसका वध करके अत्याचारों की समाप्ति की ताकि समाज में सुख शांति हो सके ।

इसी प्रकार 19वीं शताब्दी में जब भारत परतंत्रता की बेड़ियों से जकड़ा हुआ था । चारों ओर अंग्रेज़ी शासक अत्याचार एवं शोषण कर रहे थे । इस देश में पाखण्ड, अशिक्षा, बेरोजगारी, छुआछूत, सतीप्रथा, जातिवाद, निर्धनता, आपसी फूट आदि कुरीतियों का साम्राज्य था तो ऐसे समय में महर्षि दयानंद का आविर्भाव हुआ ताकि इन पाखण्डों को छोड़ कर लोग सत्य के मार्ग को अपनायें । जैसे एक कवि के शब्दों में :--

तन, मन, धन लोग खो चुके थे,
परन्तु सब कुछ आके यहाँ तुमने दिला दिया ।
धन्य ! धन्य ! तुम धन्य हो महाऋषि ।
शुष्क वाटिका में रस धार को बहा दिया । ।

———————

2. महर्षि दयानंद का वंशवृक्ष एवं जन्म

महर्षि दयानंद की बहन प्रेमबाई के वंशज पोपट रावल के गृह से प्राप्त दानपात्रों से विदित होता है, कि हरिभाई त्रिवेदी 17वीं शताब्दी के अंत तक 18वीं शताब्दी के पूर्वभाग में विद्यमान थे। इन्हीं के वंश में एक मेघजी त्रिवेदी हुए। उनके दो पुत्र थे। विश्रामजी और डोसाजी। विश्रामजी जीवापुर ग्राम में जाकर बस गये और उनके भाई डोसाजी टंकारा में ही रहे। डोसा जी संस्कृतज्ञ एवं विद्वान् थे। उनके दो पुत्र हुए कुंवर जी और लाल जी। कुंवरजी के केवल वेल जी नामक एक ही पुत्र हुआ।

लालजी महर्षि दयानंद के दादा थे और उनके दो पुत्र हुए। एक मावजी और दूसरा करसनजी। ये करसनजी दयानंदजी के पिता थे और उनकी माता का नाम अमूबा या अमृतबेन था जोकि भुज के एक पुजारी भीमजी की पुत्री थी। इसी प्रकार करसनजी के पांच संतानें उत्पन्न हुई जिनके नाम निम्नलिखित हैं :--

1. मूलशंकर : -- (दयालजी, दयाराम) यह मूलशंकर ही बाद में जाकर महर्षि दयानंद के नाम से प्रसिद्ध हुए।

2. रत्ला बा : -- यह दयानंद की छोटी बहन थी। इसकी केवल 15 वर्ष की आयु में हैज़े के कारण मुत्यु हो गई जोकि दयानंद के जीवन में वैराग्य के आविर्भाव का एक मुख्य कारण बनी।

3. बल्लभजी : -- यह दयानंद के छोटे भाई थे। जब दयानंद की छोटी बहन रत्न बा का अचानक निधन हो गया और दयानंद ने गृहत्याग कर दिया। इससे दयानंदजी का पिता श्री करसनजी को अत्यंत दुःख हुआ। अब पिता ने अपने छोटे पुत्र बल्लभ जी का विवाह कच्छ के मूल निवासी एक पुजारी ब्राह्मण की कन्या मोंथीबाई से कर दिया। परन्तु दुर्भाग्यवश विवाह के 6 महीने बाद बल्लभजी की मृत्यु हो गई। घर में रोती कलपती युवा पुत्रवधु को देखकर करसनजी का हृदय विदीर्ण हो गया।

4. नवलशंकर : -- यह करसनजी का सबसे छोटा पुत्र था और इसके बाद इसकी भी मृत्यु हो गई ।

5. प्रेम बा : -- यह करसनजी की छोटी पुत्री थी जोकि परिवार में रह गई थी । इसलिये करसनजी ने उसका विवाह गोंडल के समीपवर्ती ग्राम के निवासी मंगलजी लीलाधर रावल के साथ कर दिया । प्रेम बा के पुत्र का नाम बोघल रावल था । बोघल रावल के पुत्र कल्याण रावल हुये जिनके दो पुत्र पोपट लाल एवं प्रभाशंकर थे । इसी कारण जब 1926 ई. में टंकारा ग्राम में दयानंदजी की जन्म शताब्दी का उत्सव मनाया गया था तो प्रेम बा के प्रपौत्र पोपट रावल स्वयं समारोह में उपस्थित हुए थे और उन्होंने अपनी प्रपितामही प्रेम बा और पितृपक्ष के लोगों का विस्तारपूर्वक परिचय प्रस्तुत किया था ।

महर्षि दयानंद के जन्मतिथि के विषय में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं जिनका विवरण निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जाता है :--

1. महर्षि स्वयं अपनी ''आत्मकथा'' में अपना जन्म सम्वत् 1881 (1824 ई.) लिखा है । उन्होंने स्वयं तिथि और मास का कोई उल्लेख नहीं किया गया है ।

2. विभिन्न लेखकों जैसे पं. लेखराम जिन्होंने सबसे पहले ''महर्षि दयानंद का जीवनचरित लिखने का प्रयास किया । परन्तु वे इस कार्य को अधूरा छोड़कर चल बसे । फिर यह कार्य पं. आत्माराम अमृतसरी को सौंपा गया और उन्होंने ''महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती का जीवनचरित्र'' नामक ग्रंथ का सम्पादन किया । 25-10-1897 ई. को यह ग्रंथ उर्दू भाषा में प्रकाशित हुआ । इसके उपरांत देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा लिखा गया ''दयानंदचरित'' 1896 ई. में प्रकाशित हुआ यद्यपि यह ग्रंथ अनेक दृष्टि से अपूर्ण था । महर्षि दयानंद का जीवनचरित लिखने में पं. लेख राम और देवेन्द्रनाथ मुखोपध्याय को सफलता नहीं मिली । अंत में स्वामी सत्यानंद जी द्वारा

लिखित ''श्रीमद्दयानंद-प्रकाश'' सम्वत् 1975 प्रकाशित हुआ। इस प्रकार महर्षि दयानंद सरस्वती के जीवनचरित (दो भागों में) घासीराम जी ने लिखा जोकि सम्वत् 1990 में आर्य साहित्य मंडल अजमेर द्वारा प्रकाशित हुआ। इसके विषय में डॉ. भवानी लाल भारतीय लिखते हैं :--

स्वामी जी के जीवन विषयक तथ्यों का पता लगाने में सर्वाधिक कार्य तो पं. लेखराम तथा देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने ही किया था। इन दोनों के द्वारा लिखे जाने वाले जीवनचरित उनके जीवनकाल में पूरे नहीं हो सके। पं. लेख राम द्वारा लिखा जाने वाला उर्दू जीवनचरित उनकी शहादत के बाद पं. आत्माराम अमृतसरी ने पूरा किया और मुखोपाध्याय महाशय द्वारा अधूरे जीवन चरित को मेरठ के घासीराम ने पूरा किया।

--स्वामी दयांनंद सरस्वती

व्यक्तित्व एवं विचार पृ. 22

उपरलिखित लेखकों के ग्रंथों का अध्ययन करने के उपरांत भी महर्षि दयानंद की जन्मतिथि का स्पष्ट पता नहीं चलता है।

3. आर्य सार्वजनिक प्रतिनिधि सभा ने 12-2-1825 ई. को महर्षि दयांनद की जन्मतिथि माना है। इसके अनुसार प्रतिवर्ष आर्यसमाज में इसी दिन महर्षि का जन्मदिवस मनाया जाता है।

4. इसी प्रकार राजकोट निवासी स्वर्गीय श्री कृष्ण शर्मा आर्य मिश्नरी ने भी स्वामी दयानंद के जीवन के आरंभिक भाग की खोज की थी। उन्होंने अपनी पुस्तक महर्षि दयानंद सरस्वती का ''वंशपरिचय'' में संवत् 1881 के भाद्रपद शुक्लपक्ष की नवमी तिथि को ही स्वामी जी की जन्मतिथि माना है।

परन्तु उनकी गणना के अनुसार इस तिथि को गुरुवार न होकर बुधवार था और उस दिन अंग्रेज़ी तिथि 20-9-1824 ई. थी। श्री

कृष्ण शर्मा के अनुसार इस जन्मतिथि का आधार स्वामी दयानंद की जन्मकुण्डली है। इस जन्मकुण्डली के अनुसार दयानंदजी का जन्म मूल नक्षत्र धनुराशि में प्रातः 3 बजकर 30 मिनट पर हुआ था।

निष्कर्षतः महर्षि दयानंद की जन्मतिथि के विषय में अंतिम रूप से कुछ कहा जाना कठिन है। परन्तु 20.9.1824 ई. को स्वामी दयानंद की जन्मतिथि मानना अधिक उपयुक्त है।

———

3. महर्षि दयानंद का गृहत्याग

महर्षि दयानंद का जन्म का नाम मूलशंकर था। कुल की मर्यादा के अनुसार बालक का जातकर्म-संस्कार जिह्वा पर स्वर्ण-श्लाका द्वारा मधु से 'ओ३म्' लिखकर किया गया। 5वें वर्ष में विद्यारम्भ समारोह किया गया और 8वें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जब मूलशंकर 14 वर्ष के हुए तो उस समय उनके पिताजी ने उसे शिवरात्रि का व्रत रखने की आज्ञा दी। परन्तु उनकी माताजी नहीं चाहती थी कि उसका पुत्र शिवरात्रि का व्रत रखे। परन्तु पिताजी ने एक न सुनी। पिताजी मूलशंकर को व्रत रखने के लिए अपने साथ शिवमंदिर ले गये। शिवमंदिर में अनेक शिवभक्त तथा पुजारी भी थे। दीपों से सारा वातावरण प्रकाशित हो रहा था और धूप की सुगंध समूचे वायुमण्डल को सुगंधित कर रही थी। शिवपूजा होने के कुछ समय पश्चात् ही सारे भक्त एवं पुजारी निद्रा की गोद में समा गये केवल मूलशंकर ही जागते रहे। चारों ओर गम्भीर निस्तब्धता एवं नीरवता का साम्राज्य छा गया था। इतने में शिवपण्डी पर कुछ चूहे आकर नैवेद्य खाने व मल-मूत्र करने लगे। यह सारा दृश्य मूल शंकर देख रहे थे। मूलशंकर के हृदय में घर की परम्परा के अनुसार शिव के प्रति आस्था एवं भक्ति थी। वे शिवपण्डी को ही सच्चा शिव मानते थे। परन्तु अब उन्हें यह ज्ञान हो गया था कि यह सच्चा शिव नहीं है। जब यह मूर्ति चूहों से अपनी रक्षा नहीं कर सकती तो संसार की रक्षा क्या करेगी। यह शिवपण्डी परमेश्वर कभी नहीं हो सकती क्योंकि प्रभु तो सारे संसार के रचयिता, पालक और विनाशक हैं। इस घटना ने मूलशंकर को इतना परेशान किया कि उन्हें अपने पिता को जगाना पड़ा और पिता जी से पूछा :--

पिता जी! जिस महादेव की कथा मुझे सुनाई गई है वह तो गुणों से चेतन प्रतीत होता है। यदि यह मूर्ति उसी महादेव की होती तो भला इन भ्रष्ट महामलिन मूषकों को अपने ऊपर क्यों चढ़ने देता?चूहे

उसके शरीर पर सपाटे से दौड़े फिरते हैं और यह शिर तक नहीं हिलाता और न इन घृणित जन्तुओं के स्पर्श से ही अपने को बचाता है। इस अचेतन महादेव से उस सर्वशक्तिसम्पन्न चेतन परमेश्वर को समझना असम्भव समझता हूँ। यही भेद जानने के लिए आपको जगाकर प्रश्न पूछा है।

पिता ने पुत्र के इस प्रश्न को गम्भीरता से लिया और इसका उत्तर इस प्रकार से दिया :--

पुत्र! इस कलिकाल में महादेव के साक्षात् दर्शन नहीं होते। इसलिए उसी कैलाशवासी शिव की मूर्ति बना कर प्राण-प्रतिष्ठापूर्वक पूजन किया जाता है। इन पाषाण आदि की मूर्तियों को यदि कोई महादेव की भावना से पूजे तो इससे महादेव अपनी पूजा के समान प्रसन्न हो जाता है। बेटा! तेरी तर्क बुद्धि बहुत बड़ी है यह सत्य है कि यह तो केवल देवता की मूर्ति है, साक्षात् देवता नहीं।

पिता के इस उपदेश से दयानंद की सन्तुष्टि नहीं हुई और उसकी आस्था मूर्ति पूजन से हट गई। उसकी लगन सच्चे शिव की खोज करने में लग गई। इसप्रकार मूलशंकर ने अपने घर आकर अपना व्रत तोड़ दिया और अपनी माता से लेकर खाना भी खा लिया। इसी दिन मूलशंकर को अद्‌भुत बोध हुआ जिसको ''ऋषिबोध उत्सव'' से हर वर्ष विभिन्न आर्य समाजों में मनाया जाता है। इसके विषय में एक हिन्दी कवि ने लिखा है :--

शिवरात्रि तुम्हें दे गई बोध,
पत्थर की प्रतिमा प्रभु कैसे?
निस्सीम व्याप्ति की सीमा क्या?
निर्बन्ध चेतना जड़ कैसे?

इसी प्रकार श्री विज्ञानमार्तण्ड वात्स्यायन कृत महाकाव्य ''बोधरात्रि'' महाकाव्य में भी लिखा है :--

क्या मूर्ति यह भगवान् है जिनकी सुनी हमने कथा।
विपरीत मैं तो देखता हूँ आज सब प्रभु की प्रथा।।

इसके बाद मूलशंकर ने 14 वर्ष की आयु में यजुर्वेद और अन्य वेदों के कुछ अंश कण्ठस्थ कर लिये और इसके अतिरिक्त निरुक्त, निघण्टु आदि ग्रंथों का भी अध्ययन कर लिया ।

मूलशंकर जब 16 वर्ष के थे । उस समय एक रात उन्हें अपने प्रियजनों के साथ नाच में जाना पड़ा । नाच आरंभ होने से पूर्व ही मूलशंकर के घर से एक नौकर ने वहाँ पहुँच कर सूचना दी कि उनकी छोटी बहन रत्न बा हैज़े की शिकार हो गई है । यह समाचार सुनकर शीघ्र ही मूलशंकर अपने प्रियजनों के साथ घर पहुँचे । छोटी बहिन का बहुत उपचार किया परन्तु सब व्यर्थ । चार घंटों के भीतर ही उनकी बहिन प्रभु को प्यारी हो गई । सारा परिवार रोने लगा परन्तु मूलशंकर नहीं रोये । बहिन की मृत्यु देखकर मूलशंकर के हृदय में वैराग्य का प्रादुर्भाव हुआ और उसने मृत्युन्जय बनने का संकल्प लिया जैसे वे अपनी ''आत्मकथा'' में लिखते हैं :--

जन्म से लेकर उस समय तक मैंने यही प्रथम बार मनुष्य को मरते देखा था । इससे मेरे हृदय पर वज्रपात हुआ और मुझे बड़ा भय हुआ । मैं भयभीत हुआ, सोचने लगा कि सारे मनुष्य इसी प्रकार मरेंगे और ऐसे ही मैं भी मर जाऊँगा । सोच विचार में पड़ गया कि जितने जीवन संसार में हैं उन में से एक भी न बचेगा । इससे कुछ ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे मरण-जन्म, सभी दुःखों से छूटकर मुक्ति हो अर्थात् उस समय मेरे चित्त में वैराग्य की जड़ जम गई ।

--आत्मकथा

मूलशंकर से पूर्व भी लोग चूहे को शिवलिंग पर चढ़ते हुए देखा करते होंगे, परन्तु यह भाव मूलशंकर के ही मन में क्यों आया कि यह वास्तविक ईश्वर नहीं है । स्पष्ट है कि कोई पुण्य आत्माएं ही होती हैं जो जन-कल्याणार्थ अपनी सुख सुविधाओं को तिलांजलि देने को उद्यत होती हैं ।

जब मूलशंकर 19 वर्ष के थे तो उस समय उनके चाचा की हैज़े के कारण मौत हो गई। चाचा की मृत्यु पर मूलशंकर फूट-फूट कर रोने लगे। मानो उनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई हो। इस घटना ने उनके हृदय में और भी वैराग्य को बढ़ा दिया।

जब मूलशंकर 20 के हो गये थे। उन्होंने अपने पिता जी से प्रार्थना की कि मुझे व्याकरण, ज्योतिष आदि के अध्ययन के लिए काशी भेज दीजिए। पिताजी तो उसके इस प्रस्ताव के लिये सहमत थे परन्तु माताजी ने काशी जाने के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। वह मूलशंकर से बोली :--

मैं जानती हूँ कि बहुत पढ़ लिख कर लड़के वैरागी बन जाते हैं, अतः मैं तुम्हें काशी नहीं जाने दूँगी।

इस प्रकार मूलशंकर ने कुछ दिनों के बाद पिताजी से फिर निवेदन किया :--

आपने मुझे काशी जाने से रोका, इसमें मेरा कुछ आग्रह नहीं, परन्तु इतना तो मान लीजिए कि यहाँ से तीन कोस पर अपनी जाति के एक वयोवृद्ध बहुत बड़े विद्वान् रहते हैं उन्हीं के पास जाकर पढ़ा करूँ। वहाँ अपनी भूमिहारी है इसलिये कोई कष्ट न होगा।

मूलशंकर के इस प्रस्ताव को पिताजी ने स्वीकार कर लिया और वह पंडितजी के पास जाकर पढ़ने लगे। कुछ समय व्यतीत हो जाने के उपरांत मूलशंकर और पंडित में विवाह का प्रसंग छिड़ गया। मूलशंकर ने पंडितजी को बताया :--

मुझको विवाह से ऐसी घृणा है कि जो किसी प्रकार मेरे मन से दूर नहीं हो सकती।

विवाह की बात किसी प्रकार पंडितजी तक न रहकर उसके पिताजी तक पहुँच गई। इसके बाद घर में मूलशंकर के विवाह की तैयारियाँ जोर-शोर से होने लगी और इसलिये उनका मन चंचल हो उठा।

जैसे आज से लगभग 2600 वर्ष पूर्व कपिलवस्तु का राजकुमार सिद्धार्थ अपनी अनुपम सुन्दर पत्नी यशोधा एवं दुधमुंहे बच्चे राहुल को छोड़कर दुःखों का निदान खोजने के लिए राजमहल का त्याग कर साधना पथ का पथिक बन गया था और इसीप्रकार आज से लगभग 500 वर्ष पूर्व तुलसीदास भी अपनी पत्नी रत्नावली के अपमानजनक शब्द सुनकर गृहत्यागी हो गये थे। ऐसे ही मूलशंकर भी 22 वर्ष की आयु में विवाहोत्सव से सुशोभित धनधान्यपूर्ण गृह को छोड़ने का निश्चय कर ''फिर लौटकर घर नहीं आऊँगा'' सत्य की खोज में घर का त्याग कर दिया।

मूलशंकर ने गृहत्याग की प्रथम रात्रि अपने नगर से 6 कोस दूर व्यतीत की। फिर सायंकाल से पूर्व 20 कोस जाकर विश्राम किया। यहाँ उन्होंने हनुमान मंदिर में रात व्यतीत की थी। अपनी यात्रा में उन्होंने बड़े चातुर्य से काम लिया। वे प्रसिद्ध मार्ग पर न चलकर ऊँचे नीचे विषम पथ से जाते थे ताकि उन्हें कोई पहचान न सके। परन्तु जब माता-पिता को पता चला कि मूलशंकर घर से भाग गया तो उनको बड़ा दुःख हुआ। चारों ओर घुड़सवार एवं सिपाही दौड़ाये। जहाँ-जहाँ पर उसके जाने की संभावना थी, वहाँ-वहाँ पर उसे खोजा गया परन्तु मूलशंकर का कुछ पता न चला।

———

4. महर्षि दयानंद की सत्य की खोज

जब महर्षि दयानंद ने सत्य की खोज और शिव दर्शन के लिये गृहत्याग कर दिया। जब वे योगियों की खोज में जा रहे थे तो मार्ग में उन्हें साधु वेश में कुछ ठग मिल गये। उनकी अंगुलियों में सोने की अंगूठियाँ एवं शरीर पर रेशमी वस्त्र थे। इस पर एक पाखण्डी साधु ने कहा :--

त्यागी बनने चले हो। हाथ की अंगुठियाँ तो छोड़ी नहीं गयी वैराग्य सिद्धि क्या धूल करोगे।

इस पर उन्होंने अंगूठियाँ उतार कर उन पाखण्डी साधुओं को सौंप दी। इस प्रकार लाल भक्त योगी के पास पहुँच कर वे योग सीखने लगे। उन्होंने मूलशंकर को नैतिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा दे डाली और उनका नाम शुद्ध चैतन्य रख दिया। कोट काँगड़ा में उन्होंने तीन मास काटे परन्तु उनकी मनोरथ-मुक्ता उन्हें वहाँ न मिल सकी। शुद्ध चैतन्य कोट काँगड़ा से थोड़ी ही दूर गये थे उनकी भेंट एक परिचित व्यक्ति से हो गई। उन्होंने उसे कह दिया कि वह सिद्धपुर जा रहा है और वहाँ पहुँच वे नीलकण्ठ महादेव के मंदिर में ठहरे। कुछ समय बाद परिचित व्यक्ति ने सारी रामकहानी पत्र द्वारा लिख कर महर्षि दयानंद के पिता जी को भेज दी और सूचित कर दिया कि आप का पुत्र सिद्ध मेले में गया है। पुत्र का समाचार मिलते ही उसके पिता जी पुत्र की खोज में सिद्धपुर पहुँचे और खोजते-खोजते उस मंदिर में पहुँच गये जहाँ उनका पुत्र ठहरा हुआ था। पिताजी अपने पुत्र को गेरुवे वेश में देखकर क्रोध से बोले :--

तूने सदैव के लिए हमारे वंश को दूषित कर दिया है। तू हमारे को कलंक लगाने वाला जन्मा है।

इस प्रकार पिताजी को क्रोधित देखकर शुद्ध चैतन्य ने अपने पिता जी के दोनों पांव पकड़ लिये और वह अत्यंत विनम्रता से बोला:--

मैंने गृह त्याग कुछ धूर्तों के बहकाने से किया है। अपने इस कर्म का मैं पर्याप्त फल पा चुका हूँ। मैंने बहुत कष्ट उठाए हैं। आप मेरे अपराधों को क्षमा करें। मैं तो स्वयं ही घर लौटने की सोच रहा था। अब मैं आपके साथ घर चलने के लिये तैयार हूँ।

परन्तु मूलशंकर की इन बातों पर पिताजी को विश्वास नहीं हुआ और क्रोध में आकर उन्होंने उसके गेरुवे वस्त्र फाड़ डाले और तूंबे को तोड़ डाला। मूलशंकर के पिताजी ने कहा :--

तेरी माता तेरे वियोग में रो-रोकर मर रही है और तू ऐसा कठोर हृदय है कि मातृ-हत्या करना चाहता है।

इस पर पुत्र ने पिताजी को उत्तर दिया कि आप निश्चित् हो जाइए। मैं आपके साथ घर जाकर माताजी के दर्शन करूँगा। परन्तु पुत्र की बातों पर पिता को विश्वास नहीं हुआ। इसलिए पिताजी ने पुत्र की निगरानी के लिये सिपाहियों का कड़ा पहरा लगा दिया और आज्ञा दी कि वे रात-दिन जागते रहें कहीं मेरा पुत्र फिर से भाग न जाए।

परन्तु मूलशंकर पिताजी से पीछा छुड़ाकर भागना चाहते थे। इसलिये उन्हें रात को भी नींद नहीं आई। जब तीसरी रात का तीसरा पहर आरंभ हुआ और पहरेदार सो गये। तो उस समय अवसर का लाभ उठाकर हाथ में एक जलपात्र लेकर लघुशंका के बहाने वहाँ से उठकर भाग गये। भागकर वे सिद्धपुर से आधा कोस दूर एक बाग़ में चले गये। वहाँ पर एक पुराना मंदिर था। अब वे वट वृक्ष की शाखाओं को पकड़कर मंदिर के शिखर पर छिप कर बैठ गये ताकि कोई उन्हें देख न ले। जब पिताजी और पहरेदारों को यह समाचार मिला तो पिता ने उन्हें चतुर्दिक दौड़ाया परन्तु सब व्यर्थ। मूलशंकर वहीं मंदिर की चोटी पर छिपकर बैठे रहे और उन्हें किसी ने नहीं देखा और रात के चार बजे घोर अंधकार में वे मंदिर की चोटी से नीचे उतरे और उस ग्राम के दो कोस दूर जाकर ठहरे। यह पिता-पुत्र की अंतिम

भेंट थी ।

इसके बाद वे अहमदाबाद होकर बड़ौदा के चैतन्यमठ में ठहरे । बड़ौदा से नर्मदा के तट पर भी गये । वहाँ वे सच्चिदानंद परमहंस से मिले और ज्ञानचर्चा भी हुई । वे चाणोदकर्नाली भी गये और वहाँ उन्होंने परमानंद परमहंसजी के साथ अध्यापन करना आरंभ कर दिया । यहाँ रहकर ''वेदांतसार'', ''वेदांत परिभाषा'' आदि ग्रंथों का अध्ययन किया । परन्तु उनकी ज्ञान-पिपासा शांत नहीं हुई ।

शुद्ध चैतन्य को अब स्वयं भोजन बनाना पड़ता था जिससे विद्याध्ययन में बाधा पड़ती थी । अतः उन्होंने संन्यास लेने का निर्णय कर लिया । अतः वे महाराष्ट्र के दण्डीस्वामी पूर्णानंद सरस्वतीजी से मिले । शुद्ध चैतन्य के अपने मित्र दक्षिणी पंडित से कहा कि वे दण्डीस्वामी जी से संन्यास लेना चाहते हैं । पहले तो दण्डी जी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया । परन्तु बाद में दक्षिणी पंडित के मजबूर करने पर मान गये । इस प्रकार दण्डी स्वामी पूर्णानंद सरस्वतीजी जोकि महाराष्ट्र के रहने वाले थे । शुद्ध चैतन्य को संन्यास की दीक्षा दी और उसका नाम दयानंद सरस्वती रखा ।

कुछ समय के उपरांत दयानंद योग सीखने लगे । इस प्रकार शिवानंद गिरि एवं ज्वालानंद पुरी ने दयानंद को योग की शिक्षा प्रदान की । इस प्रकार दयानंद ने चाणोदकर्नाली में रहकर एक मास तक जप तप किया । अनुष्ठान करते रहे फिर अपने योगी गुरु के आदेशानुसार अहमदाबाद पहुँच कर दुग्धेश्वर के मंदिर में उनसे मिले और योगविद्या सीखने लगे । अपने योग गुरु की कृतज्ञता व्यक्त करते हुये वे लिखते हैं :--

वहाँ उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की और अपने वचनानुसार मुझको निहाल कर दिया । अर्थात् उन्हीं महात्मा योगियों के प्रभाव से मुझको पूर्ण योगविद्या और उसकी साधनक्रिया अच्छी प्रकार विदित हो गई इसलिये मैं उनका अत्यंत कृतज्ञ हूँ ।

इस प्रकार संन्यासी बनने के बाद लगभग 3 वर्षों तक स्वामी दयानंद योगियों एवं संत महात्माओं के साथ सत्संग करते हुए अपनी आत्मिक उन्नति करते रहे। संवत् 1912 में प्रथम बार हरिद्वार पधारे और योगियों से ज्ञान चर्चा की। इसके संबंध में वे स्वयं लिखते हैं :--

मैंने हरिद्वार का पहला ही कुंभ देखा था। मैंने यह कभी कल्पना भी नहीं की थी कि कुंभ के मेले में इतने त्यागी और तत्वदर्शी पुरुष आयेंगे।

इसके पश्चात् स्वामी दयानंद जी ने एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधुओं के साथ उत्तराखंड की यात्रा आरम्भ की। वे केदारघाट से चल रुद्रप्रयाग आदि स्थानों पर होते हुए शिवपुरी पहुँचे। वहाँ से चलकर कुछ समय तक गुप्तकाशी में रहे। इस प्रकार कई स्थानों पर घूम-घूम कर ओखीमठ पहुँच गये। वहाँ पर एक विशाल मठ था। वहाँ के साधुओं का जीवन ठाट-बाट एवं पाखण्ड से व्यतीत हो रहा था। ओखीमठ का मुख्य महन्त स्वामी दयानंद के ब्रह्मचर्य, ज्ञान, गुणों एवं आकर्षण व्यक्तित्व से अत्यंत प्रभावित हुआ। एक दिन स्वामी दयानंद को प्रलोभन देते हुए बोला :--

दयानंद! घुमक्कड़ों की भाँति घूमने से क्या मिलेगा?हमारे शिष्य बनकर गद्दी के स्वामी और लाखों रुपयों की सम्पत्ति के अधिकारी बनो।

स्वामी दयानंद ने उत्तर दिया :--

महन्त जी! जिस वैभव पर आपको अभिमान है। मेरे पिता जी की सम्पत्ति आपकी पूजापाठ के पाखण्ड से एकत्र की गई सम्पत्ति से कई गुणा अधिक है। जब मैं वह त्याग आया तब आपके धन-धान्य की ओर कब ध्यान कर सकता हूँ।

स्वामी दयानंद से महन्त ने पूछा :--

आपका उद्देश्य क्या है?किस वस्तु की जिज्ञासा में मग्न तुम इतने कष्ट-कलेश उठा रहे हो?

इस पर स्वामी दयानंद ने उत्तर दिया :--

मैं सत्य विद्या और मोक्ष चाहता हूँ।

महन्त स्वामी दयानंद के त्याग, तप और उद्देश्य से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उन्हें कुछ देर मठ में ठहरने का अनुरोध किया। परन्तु स्वामी दयानंद अगले दिन जोशीमठ की ओर चले गये। वहाँ उन्होंने कई विद्वानों से सत्संग भी किया। इसके बाद वे बद्रीनारायण जा पहुँचे। उस समय रावल जी वहाँ के मुख्य महन्त थे। एक दिन प्रातः काल ही स्वामी दयानंद जी अलखनंदा नदी के तट पर पहुँचे। नदी को पार करते समय अनेक कठिनाइयों का सामना भी स्वामी दयानंद जी को करना पड़ा यहाँ तक कि वे अचेत भी हो गये थे। फिर रात को 8 बजे बद्रीनारायण पधारे।

द्रोणसागर से स्वामी दयानंदजी मुरादाबाद आये। वहाँ से सम्वल गढमुक्तेश्वर होते हुए गंगा तट पर पहुँचे। उस समय उनके पास ''हठप्रदीपिका'', ''योगबीज'' और ''शिवसंध्या'' नामक पुस्तकें थी। इन पुस्तकों में नाड़ी चक्र का बड़ा विस्तृत वर्णन था। उन्होंने गंगा नदी में बहते हुए शव की चीर-फाड़ की थी। इस प्रकार ग्रंथ वर्णन में असत्य पाकर सारी पुस्तकों को फाड़ कर शव के साथ ही उन्हें गंगा में बहा दिया। फिर स्वामी दयानंद फर्रुखाबाद पहुँचे। वहाँ कुछ समय ठहरकर कानपुर चले गये। कानपुर और प्रयाग के मध्यवर्ती स्थानों में विचरते रहे। फिर काशी और काशी से चण्डाल गढ़ चले गये। वहाँ दुर्गाकुण्ड मंदिर में 10 दिन तक रहे। स्वामी दयांनद ने नर्मदा नदी के स्रोत देखने की अपनी यात्रा आरंभ की। यह पहाड़ी मार्ग बड़ा कठिन था। वस्तुतः स्वामी दयानंद नर्मदा नदी के स्रोत तक कब पहुँचे, इसका किसी भी व्यक्ति को कुछ भी पता नहीं है।

---

5. महर्षि दयानंदजी का 1857 ई. की क्रांति में योगदान

हम देखते हैं कि स्वामी दयानंदजी ने अपनी आत्मकथा में 1847 ई. से 1856 ई. तक का जीवन परिचय लिखा है। परन्तु 1857 ई. से 1859 ई. तक का कोई भी वर्णन नहीं किया है। पुनः 1860 ई. के पश्चात् का जीवन परिचय लिखा है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस काल में वे स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग ले रहे थे।

वे स्वतंत्रता की क्रांति सभाओं को संबोधित करते थे। 1855 ई. के आरंभ में प्रथम सभा हरिद्वार में हुई थी। इस सभा में सम्राट् बहादुर शाह ज़फ़र के शहजादे फ़िरोजशाह अजीमुल्ला खां, रंगू बापू आदि सम्मिलित हुये थे। इस सभा में 1500 लोग उपस्थित हुए थे। दूसरी सभा गढ़ गंगा के मेले के अवसर पर गंगातीर पर हुई जिसमें 2500 लोगों ने भाग लिया था। तीसरी सभा अक्तूबर 1855 ई. में हरिद्वार में हुई थी जिसमें 195 मुस्लिम सूफ़ी संतों ने भाग लिया था। इन सभाओं को स्वामी दयानंदजी संबोधित करते थे। इन सभाओं की योजना स्वामी ओमानंद और स्वामी पूर्णानंद ने तैयार की थी और इनकी व्यवस्था स्वामी विरजानंद ने की थी।

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि 1857 ई. की क्रांति के सूत्रधार मंगल पाण्डे, तांत्या टोपे, लक्ष्मीबाई, अजीमुल्ला खां और बहादुरशाह ज़फ़र थे। परन्तु यह बाबा औघड़ नाथ कौन था?इस साधु का उल्लेख उस समय के सरकारी अभिलेखों में भी मिलता है। यहाँ तक कि आज भी मेरठ में काली पलटन बाबा औघड़ नाथ का शिव मंदिर विद्यमान है। यह मान्यता है कि यह बाबा औघड़ नाथ और कोई नहीं अपितु स्वयं स्वामी दयानंदजी ही थे जिन्होंने अपना छदम् नाम बाबा औघड़ नाथ रखा था।

बाबा औघड़ नाथ गर्मियों में मेरठ की तपती गर्मी में 9 बड़े

मटकों में रात को पानी भरकर रखते थे। इसके पश्चात् दिन में प्यासे सैनिकों को पानी पिलाते थे। पानी पिलाते समय वे प्रत्येक सैनिक से पूछते थे कि वह हिन्दू है या मुसलमान ?यदि वह हिन्दू होता तो उससे कहते कि जिन कारतूसों को मुंह से छीलते हो उनमें गाय की चर्बी लगी है और मुसलमानों सैनिकों से कहते थे कि इनमें सूअर की चर्बी लगी है। इस प्रकार से हिन्दू मुसलमान सबको धर्म विरुद्ध कार्य करवाया जाता है। इससे वे सैनिकों में अंग्रेज़ी राज्य के विरुद्ध विद्रोह की भावना भरते थे। मंगल पाण्डे, बाबा औघड़ नाथ के प्रिय शिष्यों मे से एक थे। जब उसका तबादला मेरठ से बैरकपुर हुआ तो उससे पूर्व रात्रि को वह बाबा औघड़ नाथ से आशीर्वाद लेने के लिये आया था।

अतः महर्षि दयानंद जी 1857 ई. के स्वतंत्रता संग्राम में न केवल सक्रिय थे अपितु एक मौन साधक के रूप में उसके महान् पुरोधाओं में से थे। वीर विनायक सावरकर की पुस्तक ''1857 ई. का स्वातंत्रय समर'' के अनुसार इस क्रांति को फैलाने में सभी पंथों के साधुओं का सक्रिय योगदान था। यह टिप्पणी स्वामी दयानंद जी के योगदान की पुष्टि करती है। इस प्रकार डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार अपने ग्रंथ ''आर्य समाज का इतिहास'' (खण्ड IV) में लिखते हैं हम इस बात की प्रबल संभावना पर विचार कर चुके हैं कि 1857 ई. की स्वातंत्रय क्रांति में महर्षि दयानंद व उनके गुरु विरजानंद दण्डी का सक्रिय योगदान था। बल्कि ये क्रांति का विस्फोट करने वाले पुरोधाओं में से थे। डॉ. सत्यकेतु आगे लिखते हैं कि महर्षि दयानंद उन व्यक्तियों में से थे जो 1857 ई. की क्रांति से निराश नहीं हुए बल्कि संग्राम की विफलता पर विचार कर उन्हें दूर करने व उद्देश्य प्राप्ति के लिए प्रयत्न जारी रखने वालों में से थे। अतः उपरलिखित विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि महर्षि दयानंद जी का 1857 ई. की क्रांति में बहुत बड़ा योगदान था।

———

6. महर्षि दयानंद और मथुरा पाठशाला

स्वामी दयानंद हिमालय पर गये थे। वहाँ पर जाकर वे आदिशंकराचार्य द्वारा संस्थापित ज्योतिर्मठ भी गये थे। इस मठ के महन्त स्वामी पूर्णानन्द के शिष्य थे। इसी महन्त ने उन्हें स्वामी पूर्णानन्द से पढ़ने की प्रेरणा दी थी और स्वामी पूर्णानन्द के नाम स्वामी दयानंद को एक पत्र भी दिया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिमालय की यात्रा पूरी करके स्वामी दयानंद स्वामी पूर्णानंद के पास पहुँचे और उन्हें पढ़ाने के लिए निवेदन किया। उन दिनों उन्होंने मौनव्रत रखा हुआ था। इस पर स्वामी पूर्णानन्द ने उत्तर दिया :--

मैं 110 वर्ष का हो गया हूँ। वृद्धावस्था के कारण पढ़ाने का काम नहीं कर सकता। अतः तुम मथुरा में मेरे शिष्य विरजानंद के पास जाओ।

इस विषय पर विद्वानों के पृथक्-पृथक् विचार हैं कि स्वामी दयानंद मथुरा किस समय आये। पं. लेखराम के अनुसार स्वामी दयानंद रीवा (बुंदेलखंड) से चल कर 14-11-1860 ई. को मथुरा पहुँचे थे। 14-11-1860 ई. से 9-4-1863 ई. तक स्वामी विरजानंद के श्रीचरणों में विद्याध्ययन करते रहे। उस समय उनकी आयु 36 वर्ष की थी। सात फुट से ऊँचा तप्त स्वर्ण-सा गौर शरीर जिस पर ब्रह्मचर्य का ओज एवं तेज टपक रहा था, जो योग साधना एवं विविध प्रकार के तप व व्रतों से कान्तिमय हो रहा था, व्यायाम से सुगठित एवं संतुलित था, बरबस लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। उनके शरीर पर काषाय वस्त्र, एक हाथ में मोटा सोटा, गले में रुद्राक्ष की माला, भाल पर भभूत रम रही थी। बगल में एक वस्त्र में कुछ पुस्तकें थी। यह संन्यासी मथुरा में आकर रगेश्वर महादेव के मन्दिर में ठहरे और कुछ दिन उपरांत स्वामी विरजानंद जी की कुटिया में पहुँचे।

जब स्वामी दयानंद विरजानंद की कुटिया पर पहुँचे तो उस समय कुटिया का द्वार बंद था। जब उन्होंने द्वार खटखटाया तो अंदर

से आवाज़ आई :--

कौन है ?

स्वामी दयानंद ने उत्तर दिया :--

मैं कौन हूँ ?यही जानने के लिए आपकी शरण में आया हूँ ।

अब भी द्वार बंद रहा । अन्दर से फिर आवाज़ आई :--

क्या कुछ पढ़े हो ?

इस पर स्वामी दयानंद ने जो भी पढ़ा था सब कह दिया । फिर अन्दर से आदेश हुआ :--

अब तक जो तुमने पढ़ा है वह मनुष्यकृत अनार्ष ग्रंथसमूह है । जब तक अनार्ष ग्रंथों के संस्कार तुम्हारे मन पर अंकित रहेंगे तब तक आर्ष ज्ञान, आर्ष प्रज्ञा और आर्ष विवेक का जागृत होना असम्भव है । अतः अनार्ष ग्रंथों को यमुना में प्रवाहित कर दो, उनमें प्रतिपादित मिथ्या बातों को विस्मृत कर दो । पुनः अपने अंतस्तल को विशुद्ध और निर्मल बना कर आओ । तभी आर्ष ग्रंथों का रहस्य तुम्हारी समझ में आ सकेगा ।

स्वामी दयानंद ने गुरु की आज्ञा का पालन किया और अपनी पुस्तकें यमुना में फैंक कर गुरु जी के पास आकर बोले :--

महाराज ! पुस्तकें यमुना में फेंक आया हूँ और साथ ही पुराने पढ़े को विस्मृत कर हृदयपटल को स्वच्छ कर लिया है ।

स्वामी विरजानंद जी की कुटिया में प्रवेश की आज्ञा स्वामी दयानंद को मिल गई । परन्तु अभी एक परीक्षा और थी ।

दयानंद ! तुम संन्यासी हो । संन्यासी के भोजन और निवास का कोई ठौर ठिकाना नहीं होता । अतः तुम्हारा हमारे अध्ययन करने का कोई स्थिर ढंग नहीं दीखता ।

इस प्रकार स्वामी दयानंद ने स्वामी विरजानंद से निवेदन किया :--

महाराज ! आप इसकी चिन्ता न कीजिए । मैं इसका प्रबन्ध कर लूँगा ।

इस प्रकार स्वामी विरजानंद ने स्वामी दयानंद को अपना शिष्य स्वीकार कर लिया । स्वामी विरजानंद जी की प्रेरणा से सारे नगर से चंदा एकत्रित करके स्वामी दयानंद के लिये ''महाभाष्य'' की एक प्रति 31 रुपये की मंगवाई गई थी । स्वामी दयानंद के भोजन का प्रबन्ध कुछ समय तक दुर्गाप्रसाद क्षत्रिय ने किया । फिर अमर लाल स्वामी दयानंद का परिचित हो गये । महाराजा सिंधिया उनके ज्योतिष से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने अमर लाल को कुछ एक ग्राम दान में दे दिये थे और साथ ही ''ज्योतिषबाबा'' की उपाधि से भी विभूषित किया था । उनके घर पर 100 व्यक्ति प्रतिदिन भोजन करते थे । स्वामी दयानंद जी की अद्‌भुत प्रतिभा, विलक्षण बुद्धि, दिव्य देह एवं ब्रह्मचर्य दीप्ति से चमकते हुए मुख मण्डल को देखकर वह उनकी ओर आकर्षित हो गये । उन्होंने स्वामी दयानंद जी से सविनय निवेदन किया कि आप प्रतिदिन हमारे यहाँ ही भोजन ग्रहण करें । यहाँ तक कि वह पहले स्वामी को भोजन खिलाकर फिर स्वयं खाते थे । अमर लाल के विषय में स्वयं स्वामी दयानंद ने लिखा है :--

आहार आदि की व्यवस्था करने के कारण मैं अमर लाल का नितान्त आभारी हूँ । भोजन के संबंध में वह इतने सावधान रहते थे कि जब तक मेरे भोजन का प्रबन्ध न हो जाता था वह स्वयं भोजन न करते थे । वस्तुतः अमरलाल एक महात्मा थे ।

स्वामी दयानंद जी को विश्रामघाट पर लक्ष्मी नारायण के मंदिर के नीचे की मंजिल में एक कोठरी रहने के लिए मिल गई । स्वामी दयानंद के लिए चार आने मासिक गोवर्धन सर्राफ दिया करते थे । दूध के लिए दो रुपये मासिक हरदेव पत्थर वाले दिया करते थे । अतः आर्यसमाज इन दोनों व्यक्तियों का स्वामी दयांनदजी की सहायता के लिए ऋणी रहेगा ।

भोजन और निवास का प्रबंध हो जाने पर स्वामी दयानंद जी का

अध्ययन आरंभ हुआ। स्वामी विरजानंद की प्रतिभा असाधारण, उनका पाण्डित्य अद्वितीय एवं स्मृति विस्मयजनक थी। यही कारण है कि उन्हें ''व्याकरणसूर्य'' के नाम से पुकारा जाता था। उनकी यह सुदृढ़ धारणा थी कि आर्ष ग्रंथों के बिना यथार्थ ज्ञान असम्भव है। अतः वे पाणिनी कृत अष्टाध्यायी एवं पतंजलि कृत महाभाष्य के अध्ययन पर जोर दिया करते थे। अतः स्वामी दयानंद भी इन दोनों ग्रंथों का अध्ययन करने लगे। स्वामी दयानंद स्वामी विरजानंद के शिष्यों में प्रकाण्ड पंडित एवं असाधारण प्रतिभा के विद्यार्थी थे। अतः स्वामी विरजानंद ने उन्हें कालजिह्व एवं कुलक्कर की उपाधियां दे रखी थी। कालजिह्व का अर्थ है जिसकी जीभ असत्य के खण्डन और भ्रांति जाल के छेदन में काल के समान काम करे और कुलक्कर का अर्थ है खूंटा। जो खूंटे के समान दृढ़ रहकर विपत्ति को पराजित कर दे।

एक दिन की बात है कि स्वामी दयानंद यमुना नदी के किनारे पर समाधि लगाकर बैठे थे। दूसरी ओर एक सुन्दर स्त्री ने भक्तिभाव से अपना सिर उनके चरणों पर रख दिया। उन्होंने स्वयं उस सुन्दर स्त्री को वहाँ से हटने का निवेदन किया और वह वहाँ से चली गई। उसके बाद उन्होंने स्वयं यमुना में कूद कर स्नान किया। इसके उपरांत निर्जन स्थान में तीन दिन तक निराहार रहे और चौथे दिन गुरु जी के पास पहुँचे। गुरुजी के चरण स्पर्श कर अभिवादन किया और गुरु जी ने स्वामी दयानंद जी को गले लगा दिया और उससे पूछा :--

''दयानंद! इतने दिन तुम कहाँ रहे?वत्स! तुम कृशांग प्रतीत होते हो। क्या कारण है?'' स्वामी दयानंद ने सारी राम कहानी गुरु जी को सुनाई और फिर गुरुजी बोले--''अंधे को लाठी मिल गई।''

स्वामी दयानंद गुरु विरजानंदजी की कुटिया में स्वयं झाड़ू लगाया करते थे और उनके स्नान के लिये यमुना से जल भी लाते थे। उन्होंने गुरु जी को सेवा द्वारा अपनी मुट्ठी में कर लिया था। एक दिन

कुटिया साफ करते समय कुछ कूड़ा-कर्कट रह गया और कहीं उस पर गुरु जी का पाँव पड़ गया। इस पर गुरुजी ने दयानंद को लाठी से बहुत पीटा और उनकी भुजा पर गहरी चोट आ गई। परन्तु शिष्य ने अपनी पीड़ा की ओर कोई ध्यान न देकर गुरु जी से प्रार्थना की :--

महाराज ! आप मुझे न मारा करें, मेरा शरीर तो वज्र के समान है, उस पर प्रहार करने से आपके कोमल हाथों को ही पीड़ा होगी।

कहते हैं कि उस दिन के घाव का चिह्न उनकी भुजा पर जीवन भर रहा। वे जब उसे देखते तब अपने गुरु के उपकारों को याद किया करते थे।

स्वामी दयानंद की स्मरण शक्ति इतनी तीक्ष्ण थी कि वे अपने पाठ को एक ही बार सुनकर याद कर लेते थे। परन्तु एक दिन ''अष्टाध्यायी''की एक प्रयोगसिद्धि उन्हें भूल गई और गुरुजी से प्रार्थना की :--

महाराज ! यह प्रयोग सिद्धि फिर बतला दीजिए।

परन्तु गुरुजी ने बार-बार पूछने पर स्पष्ट कह दिया--

हम एक बात को बार-बार बताने के लिये यहाँ नहीं बैठे हैं, जाओ, उसे स्मरण करके आओ। हम पिछला पाठ सुने बिना अगला पाठ नहीं पढ़ायेंगे। यदि प्रयोग स्मरण न आये तो यमुना में कूदकर प्राण भले ही दे देना, परन्तु प्रयोग स्मृति के बिना हमारे पास मत आना।

गुरुजी के आदेश का पालन करने के लिए वे यमुना नदी के तट पर जाकर बैठ गये और प्रयोगसिद्धि का चिन्तन करने लगे। उन पर योगनिन्द्रा छा गई और उन्हें प्रयोगसिद्धि याद आ गई। वे इसके पश्चात् अत्यंत प्रसन्न हुये और गुरुजी के पास पहुँच कर सारी प्रयोगसिद्धि सुनाई। इस प्रकार स्वामी विरजानंदजी की खुशी का कोई भी पारावार न रहा।

स्वामी दयानंद आर्ष ग्रंथों का अध्ययन कर कृतार्थ हो गये।

सोना दिव्य कुन्दन बन गया। उनकी विदाई का समय आ गया। गुरु जी लौंगो के बहुत शौक़ीन थे। उन्होंने गुरुजी के चरण स्पर्श करके कहा :--

महाराज! आपने असीम कृपा कर मुझे विद्यादान दी है। उसके लिये मेरा रोम रोम आपका धन्यवाद करता है। प्रभो! अब आप का शिष्य आप से देशाटन की आज्ञा ग्रहण करना चाहता है।

अपने प्रियशिष्य से गुरुजी ने पूछा :--

दयानंद क्या लाये हो?

शिष्य ने गुरुजी को उत्तर दिया :--

थोड़े से लौंग लाया हूँ।

गुरुजी ने शिष्य को उत्तर दिया :--

क्या हमारे घोर परिश्रम का यही पारिश्रमिक है?

गुरुजी से शिष्य ने निवेदन किया :--

मैं अकिंचन संन्यासी हूँ। ये लौंग भिक्षा करके लाया हूँ। गुरुजी विश्वास कीजिए। मेरे पास है ही क्या जो आपको भेंट करूं?

गुरुजी ने शिष्य को उत्तर दिया :--

दयानंद क्या तुम समझते हो कि मैं तुमसे वह वस्तु माँगूं, जो तुम्हारे पास नहीं है। मैं तुमसे गुरुदक्षिणा में वह वस्तु लेना चाहता हूँ जो तुम्हारे पास है।

गुरुजी के ज्योतिहीन नेत्रों ने चाहे इन दृश्य को न देखा हो, परन्तु वे शिष्य के हार्दिक भाव को तो समझ ही गये। उन्होंने उत्तर दिया वत्स! क्या इन तुच्छ लौंगों को देकर ही गुरुजी के ऋण से उऋण होना चाहते हो?मैं तो इससे कहीं अधिक मूल्य की दक्षिणा चाहता हूँ। गुरुजी ने अपने प्रियशिष्य को कहा :--

सौम्य! मैं तुमसे किसी प्रकार के धन की दक्षिणा नहीं चाहता हूँ। मैं तुमसे तुम्हारे जीवन की दक्षिणा चाहता हूँ। तुम प्रतिज्ञा करो कि

जितने दिन जीवित रहोगे, उतने दिन आर्यावर्त में आर्ष ग्रंथों की महिमा स्थापित करोगे। अनार्ष ग्रंथों का खंडन करोगे और भारत में वैदिक धर्म की स्थापना में अपने प्राण तक अर्पण कर दोगे।

इस विषय में डॉ. सूर्यदेव शर्मा के अपनी पुस्तक ''आर्यसमाज और हिन्दी'' में लिखा है --

अहो प्रिय शिष्य मुदित मतिमान, अखिल आशा पजरके वीर।
अरुणावत् अतुलित आभावान, अनुपम आज्ञाकारी वीर।।
दक्षिणा देते हो का तात, थाल में रख कर आधा सेर।
न लौंगे लूँगा, सुन लो बात, आ रही अंतस्थल से टेर।।
अहो ऋषि मुनियों का गुरुज्ञान, भुलाया भारत ने भरपूर।
गपोड़े ग्रंथ गढ़े गढ़मान उन्हें तुम कर दो चकनाचूर।।
दिखाकर वैदिक ''सूर्य प्रकाश'' भगा दो निशिचर अबुध उलूक।
अविद्यातम का करके नाश सुपथ दिखा ला दो अटल अचूक।।

अन्त में शिष्य दयानंद, गुरु विरजानंद से प्रतिज्ञा करते है :--

हे गुरुदेव! मैं अपने रक्त की अंतिम बूंद तक वेद, सत्य और धर्म का प्रचार-प्रसार करता रहूँगा।

जैसे एक हिन्दी कवि के शब्दों में :--

विश्व में करके वेद प्रचार, करूँ संस्थापित आर्यसमाज।
मातृ भू भारत का उद्धार, आर्य जाति का गौरव राज।।
इसी में अपूर्ण कर दूँ अपने प्राण, अगर है दयानंद मेरा नाम।।

इसके पश्चात् स्वामी दयानंद ने गुरुजी को साष्टांग दंडवत प्रणाम किया और मथुरा छोड़कर चले गये।

---

7. महर्षि दयानंद और मुख्य शास्त्रार्थ

जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम राम दिव्य अस्त्र सम्पन्न होकर जनकल्याण के लिये महर्षि अगस्त्य के आश्रम से अग्रसर हुये थे और योगिराज श्रीकृष्ण भी अपने गुरु संदीपन ऋषि के आश्रम से शिक्षा ग्रहण करके संसार के कल्याण के लिए कार्यक्षेत्र में उतरे थे उसी प्रकार दण्डीस्वामी विरजानंद से शिक्षा ग्रहण करने के उपरांत स्वामी दयानंद जी भी वेदप्रचार एवं मानवता के कल्याण के लिये कार्य क्षेत्र में उतरे। उन्होंने 1863-1883 ई. तक मानवता के कल्याण के लिये अनेक कार्य किये। इन कार्यों का संक्षिप्त विवरण आगामी शब्दों में प्रस्तुत किया गया है :--

मुख्य शास्त्रार्थ :--

महर्षि ने स्वामी विरजानंद से शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् विभिन्न विद्वानों से अनेक शास्त्रार्थ किये थे परन्तु इनमें से मुख्य शास्त्रार्थों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार किया जाता है :--

(1) महर्षि दयानंद और जयपुरशास्त्रार्थ :--

जिस समय जयपुर में वैष्णवों व शैवों का वादविवाद चल रहा था। उस समय स्वामी दयानंद जयपुर पहुँच गये और उनका शास्त्रार्थ पंडित हरिश्चन्द्र से होना निश्चित् हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी दयानंद ने जब वैष्णव धर्म के ग्रंथों के प्रमाण देकर इस सम्प्रदाय की आलोचना की, तब जहाँ वैष्णवों को लज्जा एवं पराजय ने अभिभूत कर लिया, वहाँ शैवों के हर्ष का कोई अंत न रहा। स्वामी दयानंद की इस विजय से लोग धड़ाधड़ शैव सम्प्रदाय के अनुयायी बनने लगे और उन्होंने अपने गले से कण्ठियाँ उतार कर उनके स्थान पर रुद्राक्ष की मालाएं धारण करलीं। इस प्रकार स्वामी दयानंद की कीर्ति चतुर्दिक फैल गई। वे जयपुर में लगभग साढ़े चार मास तक रहे। शिव मंदिरों में भी निवास किया परन्तु लिंग पर एक बार भी जल

नहीं चढ़ाया न दण्डवत् प्रणाम किया । वहाँ के आगंतुकों को संध्या एवं गायत्री का उपदेश देते रहे ।

(2) महर्षि दयानंद और कृष्णानंदशास्त्रार्थ :--

उन दिनों स्वामी दयानंद हरिद्वार के बनखण्डीश्वर महादेव के मंदिर में ठहरे हुये थे । उस समय वहाँ पर कृष्णानंद संन्यासी भी ठहरे हुये थे । अतः अनके ब्राह्मणों ने उनसे निवेदन किया कि स्वामी दयानंद मूर्तिपूजा, अवतारवाद की आलोचना करते हैं । इस कारण हिन्दू धर्म की लाज के लिए आप स्वामी दयानंद से शास्त्रार्थ कीजिए । बड़ी आनाकानी के उपरांत् कृष्णानंद स्वामी दयानंद के साथ शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार हो गये । उन्होंने स्वामी दयानंद के साथ तीन दिन तक शास्त्रार्थ किया जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है । एक दिन शास्त्रार्थ के समय एक व्यक्ति ने कृष्णानंद से पूछा :--

महाराज ! महादेव पर जल चढ़ा आऊँ ।

स्वामी दयानंद उस व्यक्ति से बोले :--

यह तो पत्थर है । महादेव नहीं ।

स्वामी दयानंद की यह बात सुनकर कृष्णानंद क्रोधित हो गये और साकारवाद का मंडन किया । स्वामी दयानंद ने धारा प्रवाह संस्कृत बोलते हुए निराकार पर वेदों व उपनिषदों के अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये । परन्तु कृष्णानंद कोई प्रमाण न दे सका । परन्तु वह गीता का ''यदा यदाहिधर्मस्य'' श्लोक पढ़ने लगे । इस पर स्वामी दयानंद ने कहा :--

आप वाद-विवाद मेरे साथ कर रहे हैं, इसलिए मुझे ही अभिमुख कीजिए ।

परन्तु कृष्णानंद बहुत थक गये और उनके मुख से झाग निकलने लगी । इस पर उन्होंने स्वामी दयानंद को कहा :--

अच्छा ! लक्षण का लक्षण बताइए ।

इस पर स्वामी दयानंद ने उत्तर दिया :--

लक्ष्य का लक्षण नहीं होता है । जैसे कारण का कारण नहीं होता, वैसे ही लक्षण का लक्षण नहीं होता । पूज्य का पूज्य और आटे का आटा नहीं हो सकता ।

यह सुनकर कृष्णानंद सभास्थल से उठकर चला गया और उसने अपनी पराजय स्वीकार कर ली । स्वामी दयानंद के इस शास्त्रार्थ का ब्रह्मचारी क्षेमकरण पर भी अत्यधिक प्रभाव पड़ा और उसने अपनी सारी मूर्तियाँ गंगा में बहा दी ।

(3) महर्षि दयानंद और हीरावल्लभ शास्त्रार्थ :--

अपने पूर्व निवास काल में दयानंद ने पं. अम्बादत्त व्यास से शास्त्रार्थ कर उसे पराजित किया था । उनके पराजय की पीड़ा को पौराणिक समुदाय ने अत्यंत तीव्रता से अनुभव किया । विशेषरूप से भागवती पं. भगवानदास चाहते थे कि स्वामी दयानंद जी का मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ किसी विख्यात विद्वान् से कराया जाए । इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने अनूपशहरवासी पं. हीरावल्लभ शास्त्री से सम्पर्क किया और उसे स्वामी दयानंद जी महाराज से शास्त्रार्थ के लिये तैयार कर लिया । पौष शुक्ला दशमी संवत् 1924 को हीरावल्लभ कर्णवास में आ गये । निकटवर्ती ग्रामों में लगभग चार हज़ार पण्डित एवं विद्वान् ब्राह्मण भी शास्त्रार्थ देखने के लिए एकत्रित हुए । इस समस्त आयोजन का व्यय ठा. मोहनसिंह ने वहन किया । पं. हीरावल्लभ घोर मूर्तिपूजक थे । उन्होंने शास्त्रार्थ स्थल पर आते ही एक सुन्दर सिंहासन पर गोपालजी, शालिग्राम, बालमुकुन्द, गोमती चक्र आदि की प्रतिमाओं को स्थापित किया और प्रतिज्ञापूर्वक घोषणा की कि वे स्वामी दयानंद जी को शास्त्रार्थ में परास्त कर उनके हाथों से ही देव प्रतिमाओं को तुलसीदल तथा अन्य नैवेद्य चढ़वायेंगे । शास्त्रार्थ के दिनों में भी उनका नित्यप्रति का नियम यह रहा कि वे स्नानोपरांत पूजनादि के पात्र ठाकुर प्रतिमाओं के समक्ष रख कर शंख ध्वनि करते, देवताओं की आरती

उतारते तथा देर तक स्तोत्र पाठ करते। पुनः उसी सिंहासन को सिर पर उठा कर स्वामी दयानंद जी के निकट आते और शास्त्रार्थ में प्रवृत्त होते।

पं. हीरावल्लभ से हुआ यह शास्त्रार्थ अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। पं. हीरावल्लभ उच्चकोटि का शास्त्रज्ञ विद्वान् थे। शास्त्रार्थ निरन्तर 6 दिन तक चला। कविकुमार शेरसिंह वर्मा ने इस शास्त्र विचार का वस्तुनिष्ठ विवरण स्वलिखित पाण्डुलिपि में प्रस्तुत किया था। उन्होंने प्रत्येक दिन के विचार का पृथक्शः ब्यौरा दिया है। प्रथम दिन का वृत्तान्त कविकुमार के शब्दों मे ही लिखना उचित है :--

हीरावल्लभ ने प्रथम ही मूर्तिपूजा और भागवत पर एक व्याख्यान संस्कृत में दिया जिसे तीन घण्टे तक कहते रहे। समस्त मनुष्य स्वामी जी को चुपचाप सुनते हुए जान अपना-अपना जनमत करते रहे। बहुतों के मुख से तो यह शब्द सुनने को आये--मुंडा (संन्यासी) अब कुछ नहीं बोलता। आज इसका गुरु मिला है। जो विद्वान् समझते थे, चुपकी लगाए मग्न मन, धाराप्रवाह हीरावल्लभ जी की संस्कृत वक्तृता की महिमा गाने लगे। ग्यारह बजे स्वामी जी ने बड़े गम्भीर स्वर से 'विश्वानि देव' मंत्र का उच्चारण किया। बड़े मधुर उच्चारण से संस्कृत बोलना प्रारम्भ किया। बीस मिनट में उनके प्रश्नों का सविस्तार उत्तर देकर मूर्तिपूजा पर दस आक्षेप (कर) भागवत को कपोल कल्पित तथा बोपदेव प्रणीत सिद्ध किया।

पं. हीरावल्लभ ने स्वामी दयानंद जी के आक्षेपों का उत्तर भी संस्कृत में दिया। अब तक दोपहर का एक बज चुका था। पं. हीरावल्लभ ने सभा में उपस्थित लोगों से कहा कि स्वामी जी तो निरुत्तर होने वाले ही हैं, अतः थोड़ी देर ठहर कर उनका पक्ष भी सुन लेना चाहिए। अब दयानन्द के बोलने की बारी आई। उन्होंने दस मिनट में ही पं. हीरावल्लभ की स्थापनाओं का खण्डन कर दिया। अब

तक का सारा विचार संस्कृत में ही हुआ था। अतः उपस्थित जनों के आग्रह पर पं. हीरावल्लभ ने वादी और प्रतिवादी पक्ष की बातों का भाषानुवाद कर सुनाया। उन्होंने यह भी कहा कि आज का विचार प्रतिमा, मूर्ति, भागवत आदि शब्दों की व्याकरणमूलक सिद्धि से ही संबंधित था, जिससे स्वामी जी की भी प्रायः सहमति ही है। इस पर स्वामीजी ने स्पष्ट कर दिया कि शब्दार्थ से ही प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। मूर्तिपूजा को वेदोक्त सिद्ध करना होगा तथा भागवत का व्यासोक्त होना भी अभी साध्य कोटि में ही है। यह ग्रंथ अनार्ष और अश्लील होने से अप्रामाणिक है। इसके पश्चात् प्रथम दिन की सभा समाप्त हुई।

दूसरे दिन की कार्यवाही दोपहर बाद हुई। प्रातःकाल पं. हीरावल्लभ के शिविर में आगन्तुक ब्राह्मणों का पारस्परिक विचारविमर्श चलता रहा। इधर प्रातः दस बजे तक स्वामी दयानंद भी अपने निकट आये लोगों को नानाविध उपदेश देते रहे। तीन बजे पं. हीरावल्लभ आये और पुनः धाराप्रवाह संस्कृत में वार्तालाप आरम्भ हुआ। स्वामी जी ने दो बार अपने पक्ष को प्रस्तुत किया। उन्होंने अत्यंत संयत और सौम्य भाव से अपने कथन का उपसंहार करते हुए प्रतिद्वन्द्वी पण्डित से कहा :--

यह धर्म विचार है। आज आप हठ छोड़ कर वार्ता करें। आप में पहले सा भाव, ओज नहीं पाया जाता। आप समस्त विद्वन्मण्डली के प्रतिनिधि हैं। आप पर सत्यासत्य के विचार में इस समय समस्त जन समुदाय का पूर्ण विश्वास है। आपको शाखान्तर में प्रकरण छोड़ कर जाना उचित नहीं है।

हीरावल्लभ ने अभिमानपूर्वक उत्तर में कहा कि प्रातःकाल होने दीजिए, आपसे मूर्तिपूजा करा के छोड़ूंगा। इस पर स्वामी दयानंद ने अट्टहास करते हुए कहा कि यह तो सब प्रकट हो जायेगा। जाने आप मुझसे मूर्तिपूजा करवायेंगे या स्वयं इस व्यावृत्ति से छुटकारा पायेंगे।

परन्तु प्रकरण का ध्यान अवश्य रखना चाहिए । द्वितीय दिन का विचार यही समाप्त हो गया । ठाकुर प्रतिमाओं को भोग लगा कर आगन्तुकों को हलुआ पूरी खिलाई गई ।

तीसरे दिन के शास्त्रार्थ का प्रारम्भ पं. हीरावल्लभ ने महाभारत के एक आख्यान को सुना कर किया जिसमें भील बालक एकलव्य के गुरुवर द्रोणाचार्य की मूर्ति के समक्ष किये गये शस्त्राभ्यास द्वारा प्राप्त कृतकार्यता का उल्लेख था । इस पर स्वामी महाराज ने कहा :--

भावना तीन प्रकार की होती है--सत्य भावना, मिथ्या भावना और दुर्भावना । सत्य भावना का उदाहरण अग्नि के दाह, प्रकाश, गति और पदार्थों के सूक्ष्म करने आदि गुणों का है । मिथ्या भावना--अग्नि में स्नान, हस्तप्रक्षालन आदि की है जो अग्नि के गुण और लक्षण के विरुद्ध, स्वभाव से सिद्ध न होने से लोक मान्य के योग्य नहीं ठहरती । दुर्भावना का उदाहरण बाजीगर का तमाशा है, जिसमें अग्नि के खेल दिखा कर अनजान लोगों को ठगने और पैसा कमाने की विद्या आती है ।

पुनः उन्होंने बलपूर्वक कहा कि भील बालक को जो शस्त्र विद्या प्राप्त हुई वह निरन्तर किये गये अभ्यास का फल था, न कि गुरु की मूर्ति का कृपाप्रसाद । अपने कथन को समाप्त करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि महाभारत के इस आख्यान में वर्णित घटना को न तो शास्त्राज्ञा या वेदाज्ञा ही माना जा सकता है । पुनः व्यंग्यपूर्वक कहा कि क्या मूर्तिपूजा का आचार्य आप भील को मानते हैं ?बनवासी मूर्ख लोगों के ढकोसलों को प्रमाण कोटि में कैसे लिया जा सकता है ?ऐसे हास्यविनोद शास्त्रार्थ में व्यर्थ हैं ।

इसके पश्चात् पं. हीरावल्लभ ने मूर्तियों की प्राण प्रतिष्ठा की बात चलाई और एतद् विषयक प्रमाण दिये । स्वामी जी ने अपने सिद्धान्तपक्ष को स्थापित करते हुए कहा :--

जिसको वेद ने ओंकारादि नामों से पुकारा है, जिसे 'न तस्य

प्रतिमाऽस्ति' कह कर वर्णन किया है, जिसमें प्रकृति का लेशमात्र भी नहीं है, जिसे शास्त्रकारों ने निर्लेप कहा, उसमें प्राणादि विकार क्यों कर हो सकते हैं?अथवा उसे प्राणों की आवश्यकता ही क्या है?संसार को तो उसने अपने अकिंचन सामर्थ्य से बनाया है, उसकी आप प्राणप्रतिष्ठा करते हुए प्राणदान देते हैं?क्या यह आश्चर्य और अविद्या नहीं हैं?

उपर्युक्त विचार के पश्चात् कुछ अन्य लोगों ने भी विभिन्न शकांयें उपस्थित कीं, जिनका समाधान स्वामी जी ने भली प्रकार किया।

चौथे दिन औपचारिक रीति से शास्त्रार्थ नहीं हुआ। समीपवर्ती स्थानों अनूपशहर तथा दानपुर से प्रामाणिक शास्त्रग्रंथ मंगवाये गये। स्वामी जी ने कहा कि पं. हीरावल्लभ ही इन ग्रंथों को देख कर अपना पक्ष रखें। उन्हें स्वयं पुस्तकों की अपेक्षा नहीं है। सायंकाल के समय विभिन्न वर्गों के लोगों ने स्वामीजी की सेवा में उपस्थित होकर शंकासमाधान किया।

शास्त्रार्थ का पांचवाँ दिन। समीपवर्ती ग्रामों से हज़ारों की संख्या में ब्राह्मण, पण्डित और दर्शक एकत्र हो गये। पर्व स्नान की दृष्टि से भी अनेक लोग आ गये थे। शेरसिंह वर्मा के अनुसार कोई 4000 लोग उपस्थित थे। नौ बजे प्रातः हीरावल्लभ पण्डित मंडली से घिरे, पुस्तकों सहित आये। वृक्ष के नीचे ठाकुर जी का सिंहासन रख कर सभा में उपस्थित जनसमुदाय को सम्बोधित कर बोले :--

आज स्वामी जी महाराज को शालिग्राम पर तुलसी चढ़ाना तथा बालमुकुन्द को भी हाथ से भोग लगाना पड़ेगा। आप लोग उनके हाथ का प्रसाद लेकर ही स्वगृहों को लौटें।

यह सुनकर स्वामी जी ने हँसते हुए कहा :--

दूसरा दृश्य भी ऐसा ही है जो हीरावल्लभजी सत्य को ग्रहण करने पर करेंगे और यह सब पाषाण शिला गंगा में लोप को प्राप्त होंगे। उसे भी

देखते जाना । समय आ गया है । यह पाखण्ड कल संध्या तक समाप्त हो जायेगा । आप समस्त महानुभावों को अवश्य देखना चाहिए ।

इसके पश्चात् प्रमाण ग्रंथों पर चर्चा हुई । स्वामी जी ने अपनी मान्यता को स्पष्ट करते हुए कहा कि वेद स्वतः प्रमाण और इतर ग्रंथों के आप्त वचन वेदानुकूल होने पर परतः प्रमाण माने जायेंगे । वाल्मीकिय रामायण और महाभारत के प्रक्षिप्त अंश प्रामाण्य कोटि में नहीं आयेंगे । संध्या पर्यन्त प्रामाण्याप्रामाण्य ग्रंथों का ही विचार चलता रहा । पश्चात् निश्चय हुआ कि चारों वेद, चारों उपवेद, छः शास्त्र, प्रक्षिप्त भाग छोड़ कर रामायण, महाभारत तथा वेदानुकूल मनुस्मृति का ही प्रामाण्य स्वीकार किया जाएगा । इसके बाद सभा समाप्त हुई । निश्चय हुआ कि कल का दिन शास्त्रार्थ का अन्तिम दिन होगा और उसमें ही अन्तिम निर्णय हो जायेगा ।

शास्त्रार्थ के अन्तिम दिन का आँखों देखा हाल कविकुमार शेरसिंह वर्मा ने जिस प्रकार काव्यनिष्ठ एवं तथ्य प्रधान शैली में वर्णित किया है, उसे उनके शब्दों में ही व्यक्त करना उचित है :--

शीत विशेष पड़ रहा है । बदली छाई हुई है । शीतल वायु चल रहा है । दांत कड़ाकड़ जाड़े से बोल रहे हैं । नगर निवासी तथा प्रवासी सूर्योदय से पूर्व ही गंगा स्नानार्थ आ रहे हैं । जगह-जगह आज जो कुछ होने वाला है उसी की चर्चा हो रही है । कोई कहता है स्वामी जी का पक्ष प्रबल है, कोई कहता है पं. हीरावल्लभ बड़े विद्वान् हैं । कहीं दस, कहीं बीस, कहीं कहीं न्यूनाधिक मनुष्य यही चर्चा आपस में कर रहे हैं । थोड़ी थोड़ी देर में वही 'जय हो जय हो' का जयकार हो उठता है ।.... बहुत से आदमी हीरावल्लभजी के स्थान पर इकट्ठा हो गये थे । अनेक लोग ग्राम से चले आते थे... हीरावल्लभ जी ने जो निकट ही जमुनादास की मढ़ी पर ठहरे थे, ठाकुर जी की आरती का शंख बजाया, झालर आदि बाजे बजे, ठाकुर जी की पूजा हुई । सब लोग उधर ही को चल दिये । वहाँ पर चार पांच सौ के लगभग मनुष्यों का

जमाव हो गया। थोड़ी देर ठहर कर सब के सब पं. हीरावल्लभ जी को साथ लिये हुए स्वामीजी की कुटिया पर आ विराजमान हुए। जान पड़ा कि स्वामीजी अभी भ्रमण करके नहीं आये। यह देखकर बहुधा लोगों में चर्चा होने लगी--स्वामी जी चले गये, कदाचित अब न आवें।

इतने में बादल हट गया। सूर्य निकल आया। साढ़े आठ बजे का समय हो गया। पूर्व दिशा से समस्त देह पर गंगा मृत्तिका लेपन किये बड़े वेग से पृथ्वी को दबाते हुए के समान महाप्रकाशवान, एक तेजपुंज के समान, दोनों हाथों की मुट्ठी बांधे, अर्थात् वज्र मुद्रा किये, बड़े-बड़े डग धरते हुए, दोनों हाथ हाथी की सूंड के समान हिलाते हुए स्वामीजी आते दीख पड़े। कुटिया के निकट पहुँचते ही "जय हो जय हो" का शब्द गुंजायमान हो उठा। स्वामीजी मुस्कराते हुए उसी ऊंची ढेरी पर, कुछ वक्षस्थल को झुकाये, पैर गाड़ते, धीरे-धीरे चढ़ते उसी बसेन्दू वृक्ष के नीचे, जहाँ उनके निमित्त प्रथम से ही चटाई बिछी हुई थी, आन विराजमान हुए। माथे तथा वक्षस्थल को मलने लगे। मलने के कारण तथा परिभ्रमण के कारण पसीना झलक आया, श्वास भी तेज चल रहा था। फिर पद्मासन बैठ, बड़ी प्रेमदृष्टि से सब की ओर निहारा। पं. हीरावल्लभ से संस्कृत में कहा--आज आपके शास्त्रार्थ का अन्तिम दिवस है। जो कुछ कहो, समझ कर प्रमाण सहित, सिद्धान्त पक्ष पर ही हो, प्रतिमापूजन विषय है, जिसको वेदों के प्रमाण से सिद्ध करना, पूर्व पक्ष आपका; प्रतिमापूजन को वेद विरुद्ध सिद्ध करना, उत्तर पक्ष मेरा है।

स्वामी दयानंद के इस कथन को सुनकर पं हीरावल्लभ पाणिनि के 'सर्वादीनि सर्वनामानि' इस सूत्र की व्याख्या करते हुए धाराप्रवाह संस्कृत बोलने लगे। शेरसिंह वर्मा के अनुसार उस समय लगभग 2500 लोग उपस्थित थे। पं. हीरावल्लभ का वक्तव्य समाप्त हाने पर स्वामी दयानंद ने पुनः अपनी बात कहनी आरम्भ की। उनके व्याख्यान कौशल तथा वक्तृत्व शैली के संबंध में प्रत्यक्षदर्शी शेरसिंह

वर्मा ने लिखा है :--

आज का वक्तृत्व और मधुरालाप तथा शब्दप्रयोग स्वामीजी का नवीन प्रकार का, विलक्षण तथा अपूर्व दीख पड़ा। सब चकित हो गये। वक्तृत करते समय स्वामीजी का स्वरूप प्रकाश कुछ अद्‌भुत ही दीख पड़ा। सभी सभास्थ महानुभाव तथा साधारण लोग स्तंभित से रह गये। मुझ लेखक (शेरसिंह वर्मा) का तो कलेजा कम्पायमान हो गया।.... इतने में स्वामीजी व्याख्यान देकर बोले 'शीघ्रं वद, विलम्बं मा कुरु' यह कहकर दीर्घ श्वास छोड़ते हुए मौन हो गये।

अब पं. हीरावल्लभ के बोलने की बारी आई। उसने संकोचपूर्वक स्वामीजी को सम्बोधन कर कहा यह आपकी कठिन संस्कृत वैदिक शैली है, सरल भाषण होना चाहिए। यह सुनकर स्वामी दयानंद पुनः अटट्हासपूर्वक अपनी बात कहने लगे। लगभग 20 मिनट तक सरल संस्कृत में बोलकर अपना अभिप्राय समझाते हुए बड़ी मधुरता से हीरावल्लभ से हँसते हुए बोले--आपने समझा ?समझा ?समझा ?उत्तर में हीरावल्लभ ने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक पुनः संस्कृत में बोलना प्रारम्भ किया। स्वामी महाराज हँसते हुए 'अस्तु-अस्तु' कहते जाते थे।

पण्डित जी के कथन के समाप्त हाने पर स्वामीजी ने निष्कर्ष रूप से कुछ वक्तव्य दिया। शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। लोग आपस में कानाफूसी करने लगे। अब पं. हीरावल्लभ ने समाधानपूर्ण भाषा में उपस्थित जनसमाज को सम्बोधित कर कहा :--

भाइयो, स्वामीजी पूर्ण विद्वान्, तपस्वी, त्यागी ब्राह्मण हैं। जब कभी जो कुछ किया है, सब ब्राह्मण ने ही किया है। आज धर्म दिवाकर उदय हो गया। अब निशाचरी उलूकादि का प्राबल्य न रहा, और न रहेगा। अब सबको स्वामीजी से सहमत होकर धर्म और सत्य की शरण लेने में अपना उद्धार समझना चाहिए। स्वामीजी जो कुछ कहते हैं वह वेदोक्त है, सब सत्य तथा निर्भ्रान्त है, मेरा तो निश्चय हो गया।

इतना कह कर वे उठे। ठाकुर मूर्तियों के सिंहासन को लेकर गंगा के जल में प्रवाहित कर दिया।

(4) महर्षि दयानंद और गोपालदासशास्त्रार्थ :--

फर्रुखाबाद में ब्राह्मणों ने स्वामी दयानंद से शास्त्रार्थ करने के लिए मेरठ से श्रीगोपालदास शास्त्री को बुलाया और उसने फर्रुखाबाद आकर स्वामी दयानंद के डेरे के निकट एक विशाल मैदान में झंडा गाड़ दिया और वहाँ हज़ारों लोग एकत्र हो गये और कोलाहल होने लगा। स्वामी दयानंद उनके छलकपट से परिचित थे। अतः उन्होंने आदेश दिया कि शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो नीचे खड़े क्यों बड़बड़ा रहे हो और हमारे यहाँ ऊपर क्यों नहीं चले आते। इस पर श्रीगोपाल दास ने उत्तर दिया :--

मैं स्वामी दयानंद के निवास पर नहीं जाऊँगा। उसने विश्रांत को कील रखा है। अतः जाने से हार हो जायेगी।

इस शोर का कलेक्टर को भी पता चल गया और उन्होंने कोतवाल को तुरन्त वहाँ पहुँचने की आज्ञा दी। वहाँ पहुंचकर कोतवाल ने स्वामी दयानंद से पूछा :--

बाबा जी! यह क्या बखेड़ा हो रहा है?

स्वामी दयानंद ने उत्तर दिया :--

हम तो अपने स्थान पर बैठे हुए हैं न किसी को कटु वचन कहते हैं न किसी से झगड़ते हैं। आप राज कर्मचारी हैं। आप का कर्त्तव्य है कि उनसे जाकर पूछे जो सचमुच झगड़ा कर रहे हैं।

कोतवाल ने श्रीगोपालदास को बुला कर ऐसा डांटा कि वह डर के मारे शहर छोड़ गया।

(5) महर्षि दयानंद और काशीशास्त्रार्थ :--

22 -10-1869 ई. के दिन राजपुर से स्वामी दयानंद बनारस में आकर आनन्द बाग़ में ठहरे। उनके आते ही सारे नगर में हलचल

मच गई। तीव्र बुद्धि और पूर्ण स्वतंत्रता को मानने वाले सुधारक दयानंद, अंधविश्वास और रूढ़ि के गढ़ बनारस की दीवारों को सत्य सहायक मानकर, युद्ध भूमि में उतर आये। निर्भय वीर दयानंद ने गुफा में पहुँच कर शेर को ही ललकारने का निश्चय किया और माधो बाग़ में सत्य धर्म का झण्डा गाड़ दिया। काशी नरेश ने उन्हें संदेश भेजा कि यदि वे मूर्तिपूजा का खण्डन करना छोड़ दें तो उन्हें राज्य की ओर से 100 रुपये की मासिक वृत्ति मिलती रहेगी। परन्तु महर्षि दयानंद जी ने उत्तर दिया :--

यदि महाराजा सारा राज्य भी दे दें तब भी मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं छोड़ूँगा।

स्वामी दयानंद ने काशी नरेश को कहला भेजा कि यदि सत्यासत्य का निर्णय करना चाहते हो तो पंडितों को शास्त्रार्थ के लिए तैयार करो। काशी नरेश ने पंडितों को बुलाकर शास्त्रार्थ के लिए कहा। पंडितों ने उत्तर दिया कि स्वामी दयानंद वेद का पंडित है और वेद की दुहाई देता है। हम लोगों को कुछ दिन वेदों में से प्रमाण खोजने के लिए मिलने चाहिए, पीछे हम शास्त्रार्थ कर सकेंगे। 15 दिन की मुहलत दे दी गई। पंडित लोग खूब तैयारी करते रहे। शास्त्रार्थ के लिए 16-11-1869 ई. दिन मंगलवार निश्चित् हुआ। सभा के लिए माधोबाग़ ही उचित स्थान समझा गया, क्योंकि स्वामी दयानंद ने संन्यासी धर्म के अनुसार दूसरे स्थान पर जाना स्वीकार न किया। 15 दिन व्यतीत हो गये।

आज एक ओर माधोबाग़ में सभा का समारोह होने लगा और दूसरी ओर से पण्डितों को सभा स्थान तक पहुँचाने के लिए काशी नरेश के दरबार से पालकी छत्र, चंवर आदि सामग्री भेजी जाने लगी। आज मानो काशी के पण्डितों की परीक्षा का दिन था। इस दिन की सफलता पर उनका भविष्य अवलम्बित था। प्रतिपक्ष में कोपीनधारी साधु था, विद्या ही जिसका शस्त्र, सत्य ही जिसका किला था और

परमात्मा ही जिसका सहायक था। उधर अनेक पण्डितों की मण्डली थी, जिनके पास विद्या रुपी खड़ग तो थी, परन्तु स्वतंत्र विवेक के अभाव में रूढ़ि रूपी जंग से निकम्मी हो गयी थी। सत्य का मुख हिरण्यमय पात्र से बंद हो चुका था। परमात्मा का स्थान एक ओर जड़ मूर्तियों ने दूसरी ओर अन्नदाता काशी नरेश ने छीन लिया था। जहाँ कोपीनधारी अपने सहायक पर भरोसा करके सत्य के गढ़ में डेरा जमाकर, विद्या की तलवार पकड़े निर्भीक बैठा था। वहाँ अपनी शक्तियों और सहायकों को कमजोर समझ पंडित मण्डली कभी छत्र-चँवर के ढोंग का आसरा ढूंढती और कभी सैकड़ों शिष्यों की पंक्तियाँ बांधकर समझती कि अब तो दयानंद अवश्य दहल जायेगा। परन्तु यहाँ वह लौ न थी, जो हवा के झोंके से बुझ जाती।

जो जनता माधो बाग़ की ओर उमड़ रही थी उसमें 99% मूर्तिपूजा के मानने वाले थे। वे लोग सत्यासत्य निर्णय देखने नहीं आ रहे थे अपितु माने हुए ''सनातन धर्म'' को जिताने आ रहे थे। उन्हें बतलाया गया कि काशी में एक बड़ा भारी नास्तिक आया है, जो विश्वनाथपुरी में ही विश्वनाथजी को गालियाँ देता है। उसका दमन करना हिन्दूमात्र का कर्त्तव्य है, लोग अपनी- अपनी भावना के अनुसार एक बड़े नास्तिक की पराजय देखने आ रहे थे। आने वालों में अच्छे भी थे और बुरे भी थे। भले अपने पण्डितों को आशीर्वाद देते जा रहे थे और बुरे नास्तिक पर ईंट-पत्थर बरसाने के मंसूबे बांध रहे थे। सभामंडप का प्रबन्ध शहर के कोतवाल रघुनाथ सहाय के अधीन था। शान्ति से शास्त्रार्थ का कार्य चलाने के लिए उन्होंने बैठने की ऐसी व्यवस्था की थी कि स्वामी दयानंदजी के साथ एक समय में एक ही पण्डित बोल सके और पण्डित लोग उन्हें घेर कर न बैठ सकें। तीन ऊँचे आसन जमाए गए थे-- एक स्वामी दयानंदजी के लिए, दूसरा प्रतिपक्षी पण्डितों के लिए और तीसरा काशी नरेश के लिए।

विरोधियों की इतनी संख्या और उनमें भी काशी के प्रसिद्ध

गुण्डों की भरमार--स्वामी दयानंदजी के भक्तों के हृदय कांपने लगे। भक्त बलदेव ने स्वामी दयानंदजी से स्थिति की चर्चा की। स्वामी ने अपने स्वभाव अनुसार ईश्वर-विश्वास और निर्भयता का उपदेश देकर सांत्वना देते हुए कहा :--

एक परमात्मा और एक ही धर्म है। दूसरा कौन है जिससे डरें?उन सब को आ जाने दो--जो होगा उसी समय देखा जाएगा।

स्वामी दयानंदजी के भक्त पं. जवाहरदास जी ने भी कुछ सन्देह प्रकट किया, और वैसा ही उत्तर पाया। निर्भय, निष्कम्प संन्यासी उमड़ते हुए विरोधी वज्र के प्रहार को सहने के लिए तैयार होकर बैठा था और थोथी गर्ज पर मुस्करा रहा था। जो बहादुर केसरी को उसकी मांद में जाकर ललकार सकता है, वह उसकी गर्जना को भी अक्षुब्ध चित्त से सुन सकता है।

इस प्रकार पौराणिकों की अपार सेना आ पहुँची। रोब जमाने को काशी नरेश, बाल की खाल उधेड़ने को लगभग 40 पण्डित, स्वामी विशुद्धानन्द, बाल शास्त्री, माधवाचार्य, वामनाचार्य, नारायण आदि विख्यात पंडित और हल्ला मचाने को काशी के विद्यार्थी और गुण्डे--इस प्रकार झूमती-झामती और बेतहाश जय- जयकारों से आकाश को गुंजाती हुई अंग-त्रय सम्पन्न पौराणिक सेना माधोबाग़ में पहुँच गई। मर्यादाहीन सेना के पहुँचते ही मण्डल का नियम टूट गया और कोतवाल का प्रयत्न व्यर्थ हो गया। स्वामी दयानंदजी को पण्डितों ने चारों ओर से घेर लिया। उनके पास किसी हितैषी को बैठने का अवसर न दिया गया। मार्ग रोक लिये गये, और अकेले स्वामी दयानंदजी को घेर कर लगभग 50000 विरोधी सनातन धर्म का जयकारा बोलने लगे।

शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। कहने को शास्त्रार्थ था, परन्तु वस्तुतः वर्षा ऋतु के बढ़े हुए बीसियों प्रचण्ड नालों की चट्टान से टक्कर थी। प्रत्येक पण्डित अपनी बल-परीक्षा कर रहा था और चाहता था कि

किसी प्रकार स्वामी दयानंदजी निरुत्तर हो जायें, परन्तु प्रत्युत्पन्नमति संन्यासी काबू नहीं आता था। वर्षों अभ्यास एवं ब्रह्मचर्य पालन से संग्रह किए हुए निर्भयता, धैर्य, स्मृति आदि गुण इस समय उसके परम सहायक हुए। प्रश्न रूपी तीरों की लगातार बौछार हो रही थी, साधन सम्पन्न ब्रह्मचारी फेंके हुए तीरों को मार्ग में ही काटता जाता था और साथ ही अपने धनुष की करामात दिखा रहा था। उसके लक्ष्यभेदी धनुष से फेंके हुए अमोघ बाण विरोधियों के कवचों में छेद कर रहे थे।

पं. ताराचरण ने पूछा--'आप मनुस्मृति को वेद मूलक कैसे मानते हैं?

स्वामी दयानंदजी ने उत्तर दिया --'सामवेद के ब्राह्मण ने कहा है कि जो कुछ मनु ने वर्णन किया है वह औषधों का भी औषध है।

ताराचरण जी चुप हो गये, स्वामी विशुद्धानंद जी सहायता के लिये पहुँचे। और बोले--'रचनानुपत्तेश्नानु- मानम्' इस वेदान्त-सूत्र को वेदमूलक सिद्ध करो।

स्वामी दयानंद जी ने उत्तर दिया--यह उपस्थित वाद के भीतर नहीं है।

स्वामी विशुद्धानंद जी--'प्रकरण के बाहर है तो क्या हुआ?यदि तुम्हें इसका समाधान आता है तो कह दो।

स्वामी दयानंदजी -- इसका पूर्वापर पाठ देखकर समाधान किया जा सकता है।

स्वामी विशुद्धानंद --यदि सब कुछ याद न था तो काशी में शास्त्रार्थ करने क्यों आये थे?

स्वामी दयानंद--क्या तुम्हें सब कुछ कण्ठाग्र है?

स्वामी विशुद्धानंद--हाँ, हमें सब कुछ कण्ठाग्र है।

यहाँ उल्टा वार आरम्भ हुआ। पेंच में आता-आता चतुर सिपाही निकल गया। स्वामी दयानंदजी ने पूछा--

तब बताइये धर्म के लक्षण कितने हैं ?

स्वामी विशुद्धानंद ने सर्वज्ञता का दावा तो किया, परन्तु उन्हें मनुस्मृति, का धर्म लक्षण संबंधी 'धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयम् आदि श्लोक याद नहीं था, वे निरुतर हो गये। स्वामी दयानंदजी ने श्लोक पढ़ सुनाया। इस पर प्रसिद्ध धर्माचार्य पं. बालशास्त्री जी सहायता को आ पहुँचे। आपने कहा :--

हमने सम्पूर्ण धर्मशास्त्र का अध्ययन किया है, इस विषय में कुछ पूछना चाहते हो तो हमसे पूछो।

स्वामी दयानंद ने पूछा-- आप अधर्म के लक्षण बताएं।

पं. बाल शास्त्री ने कभी सोचा भी नहीं था कि कोई व्यक्ति अधर्म के लक्षण भी पूछ सकता है। उन्हें निरुत्तर होना पड़ा।

इसी प्रकार प्रश्नोत्तर होते रहे। मूर्तिपूजा के संबंध में काशी के पण्डितों ने दो ही बातें पेश कीं एक तो यह कि वेद में प्रतिमा शब्द आया है, वह मूर्ति का वाचक है, और दूसरा यह कि उद्बुध्यस्वाग्ने मंत्र में जो पूर्त शब्द आया है, वह मूर्तिपूजा का सूचक है। स्वामी दयानंदजी ने दोनों का ही समाधान कर दिया। प्रभुप्रतिमा का वेद में स्पष्ट निषेध है और पूर्त शब्द नदी-तड़ाग आदि का वाचक है। यह समाधान करके स्वामी जी बारम्बार यही पूछते रहे कि :--

वेद में मूर्तिपूजा का विधान कहाँ है ?

इस प्रश्न से लाचार हो पंडित मंडली ने चालाकी की शरण ली। इस विषय पर शास्त्रार्थ करने से टलकर पंडित लोग स्वामी दयानंदजी को उलझाने की नीयत से पुराणों के विषय पर विवाद करने लगे, परन्तु शीघ्र ही अनुभव करने लगे कि यह व्यूह भी अभेद्य है। स्वामी दयानंद जी ने अवसर पाकर व्याकरण संबंधी प्रश्न पंडितों के सामने रखा--कोई भी सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। इस विषय में घासीराम लिखते हैं--

समस्त भारतवासी ही नहीं, वरन् संसार के सब मनुष्य सदा के लिये इस कर्त्तव्यनिष्ठ, न्यायशील कोतवाल के आभारी रहेंगे। वह मूर्तिपूजक था, परन्तु उसने एक क्षण के लिये भी पक्षपात नहीं किया और वह अणुमात्र भी अपने कर्त्तव्य से पराङमुख नहीं हुआ... अतः जब तक दयानंद का नाम संसार में रहेगा तब तक रघुनाथ प्रसाद कोतवाल का नाम, गौरव और प्रतिष्ठा के साथ संसार में अमर रहेगा।

पंडित लोग खिन्न और हताश होने लगे। चार घंटे तक निरंतर शास्त्र समर में पौराणिक दल का प्रत्येक अगुआ आगे बढ़कर स्वामी दयानंद से युद्ध करता रहा और अंत में उनकी अकाट्य युक्तियों के तीक्ष्ण तीरों से उनके प्रबल प्रमाणों के परमास्त्रों से हत-प्रतिहत होकर, परास्त होकर पीछे लौटता रहा। इतनी बड़ी संख्या में इतनी बड़ी सभा में, इतना बड़ा उद्योग करने पर भी इतने बड़े विद्वानों की, इस प्रकार ऐसी पराजय इस नगरी में पहले कभी भी नहीं मिली थी। सारे महारथी सकल सामर्थ्य से भी जब सफल न हुए तो बनारस के महामल्लों ने कूटनीति चलाने की सोची।

तब माधवाचार्य आगे बढ़े और कोई दो पन्ने लाकर बीच में रखते हुए कहा कि यहाँ पर लिखा है कि यज्ञ की समाप्ति पर यजमान दसवें दिन पुराणों का पाठ श्रवण करे, अब स्वामी दयानंद बताइए कि 'पुराण' किसका विशेषण है?

स्वामी दयानंदजी-- आप पढ़ कर सुनाइए।

स्वामी विशुद्धानंद जी ने पन्ने स्वामी दयानंद जी के हाथ में पकड़ा कर कि आप पढ़ लीजिए।

स्वामी दयानंद--आप ही पढ़ दीजिए।

स्वामी विशुद्धानंद जी बोले--

मैं चश्मे के बिना नहीं पढ़ सकता, इसलिए आपको पढ़ना होगा।

स्वामी दयानंदजी ने पन्ने हाथ में ले लिये। अंधेरे के कारण

पढ़ना कठिन था । दीपक मंगवाया गया । लालटेन की रोशनी भी बड़ी कम थी, पन्ने पढ़ने में कुछ समय लगा । उचित मौका समझकर पंडित मण्डली उठ खड़ी हुई । इसी प्रकार धूर्तता होते देखकर स्वामी दयानंदजी ने स्वामी विशुद्धानंद का हाथ पकड़ कर कहा--

बैठ जाइये । निर्णय किये बिना बीच में ही उठ खड़े होना आप जैसे विद्वानों को कदापि उचित नहीं ।

परन्तु स्वामी विशुद्धानंद जी न बैठे और स्वामी दयानंद की पीठ पर हाथ फेर कर कहने लगे :--

अब बैठिए, जो कुछ होना था हो चुका ।

पंडितों का इशारा पाकर काशी-नरेश ईश्वरीनारायण सिंह भी खड़े हो गये, एकदम खड़ा होकर ''सनातन धर्म की जय'' बोलने लगा । कोतवाल बड़ा सज्जन था, उसे काशी-नरेश का ओछा व्यवहार बहुत अखरा । उसने काशी नरेश से कहा :--

आपने ताली पीट कर बहुत बुरा किया, यह कार्य सभा के नियमों के विरुद्ध है ।

नरेश कोतवाल की बगल में हाथ देकर आगे बढ़ गये और समझाया :--

हम तुम सभी मूर्तिपूजक हैं, तब अपने सामान्य शत्रु को जैसे हो सके पराजित करना ही चाहिए ।

इस दंगा-काण्ड के नेता काशी-नरेश का इशारा पाकर सम्पूर्ण जनसमूह मनमानी करने लगा । किसी ने पत्थर, किसी ने कंकर, किसी ने जूता--अधिक क्या कहें, जिसे जो मिला उसने वहाँ उछाला स्वामी दयानंदजी की ओर । जैसे तूफान के समय के जोरदार झोंकों के साथ मिट्टी, कंकर, लकड़ी, पत्ता आदि पदार्थ पर्वत की निष्कम्प चट्टान पर टकराते हैं और लज्जित होकर नीचे गिर पड़ते है । इसी प्रकार स्वार्थपूर्ण दम्भ द्वारा भड़काये गये इन मूर्ख लोगों के गर्हित पदार्थ भी

लज्जित होकर गिर पड़े। संन्यासी के पयोधि-गम्भीर हृदय पर ये घृणित कार्य कोई प्रभाव न कर सके।

पंडित ईश्वरसिंह नाम के एक निर्मल संत बनारस के निवासी थे। वे वेदान्त के निष्ठावान विद्वान् थे। उन्होंने उस दिन आनन्दोद्यान से लौटता हुआ जनसमुदाय देखा। उसमें विद्यार्थी, पंडित और साधारण लोग स्वामी दयानंदजी को अनेक कुवचन बोलते जा रहे थे। ईश्वरसिंह जी ने वहाँ यह भी सुना कि स्वामी दयानंदजी पर लोगों ने आज ईंट, पत्थर, गोबर और जूते फैंके हैं, उन्हें अगणित अपशब्द कहे हैं। उनके चित्त में, उसी समय, यह संकल्प हुआ कि चलो इसी समय चलकर स्वामी दयानंदजी की दशा देखें। यदि इस महानिरादर से, घोर अपमान से, विपरीत नीति से, निष्ठुर अन्याय से उनका चित्त विचलित न हुआ तो समझेंगे कि वह सच्चा ब्रह्मज्ञानी और एक पहुँचा हुआ महात्मा है।

जिस समय ईश्वरसिंह जी आनन्दोद्यान में पहुँचे तो महाराज चांद की चांदनी में टहल रहे थे। ईश्वरसिंहजी को आते देखकर महाराज ने मुस्कराते हुए, बड़े आदर से उनका स्वागत किया। दोनों ने मिलकर बड़ी रात तक आत्मा और परमात्मा संबंधी विषयों पर वार्तालाप करते रहे। इतनी लम्बी बातचीत में ईश्वर सिंह जी को स्वामी दयानंदजी के चन्द्रसमान चमकते हुए मुखमण्डल पर उदासीनता का एक भी धब्बा दिखाई न दिया। उनकी मुस्कराहटपूर्ण चन्द्र छटा में उन्होंने किंचितमात्र भी न्यूनता न पाई। उनकी हृदयगति साहस और उत्साह की ज्वालमाला संकुल ज्वलंत अग्नि से एक बार भी तो लम्बी सांस का धुंआ न निकला। ध्यानपूर्वक देखने पर भी उनके विमल चिदाकाश में निराशा रूपी बदली की एक टुकड़ी भी न दीख पड़ी। उन्होंने लोगों के अन्याय और अत्याचार का कुछ भी तो वर्णन नहीं किया। पण्डित ईश्वरसिंह जी ने स्वामी दयानंदजी के चरण छूकर कहा :--

महाराज ! आज तक मैं आपको वेद-शास्त्र का ज्ञाता, एक पंडित मात्र समझता रहा हूँ । परन्तु आज पंडितों के घृणित उत्पात, अपमान और विरोध की घोर आँधी से आपके हृदय-सागर में राग-द्वेष की एक भी लहर उठते न देख, मुझे विश्वास हो गया है कि आप वीतराग महात्मा और सिद्धपुरुष हैं ।

इस प्रकार पंडित जी स्वामी दयानंदजी से विदा होकर अपने स्थान को चले गये ।

पौराणिक दल ने नगर में पंडितों का जुलूस घुमाया, मूर्तिपूजा का जय-जयकार मचाकर अपनी सत्यप्रियता का परिचय दिया और सब स्थानों पर समाचार भेज दिया कि स्वामी दयानंदजी हार गये हैं । नगर में पंडितों की ओर से विज्ञापन लगा दिये गये कि स्वामी दयानंद के पास कोई न जाये, जो जायेगा वह पातकी हो जायेगा । यह सब कुछ किया गया परन्तु संसार की आँखों में धूल न डाल सके । देश के पक्षपात-हीन समाचार-पत्रों ने स्वामी दयानंदजी की विजय का ही समाचार प्रकाशित किया । पं. सत्यव्रतसामश्रमीजी ने अपनी 'प्रत्न-कमर नन्दनी' नामक मासिक पत्रिका में स्वामी दयानंदजी की सफलता की घोषणा की । 'रुहेलखण्ड' नामक पत्र ने लिखा कि स्वामी दयानंदजी ने काशी के पंडितों को हरा दिया है । 'ज्ञान प्रदायिनी' (लाहौर) ने समाचार दिया कि 'इसमें सन्देह नहीं कि पंडित लोग मूर्तिपूजा की आज्ञा वेदों में नहीं दिखा सके । 'हिन्दू पेट्रियट' ने प्रकाशित किया कि पंडित लोग यद्यपि अपने शास्त्र-ज्ञान का अतिगर्व करते थे, परन्तु उनकी बड़ी भारी पराजय हुई । स्वामी दयानंदजी का उपदेश सुनने से रोकने वाला विज्ञापन भी निष्फल हुआ । हवा का झोंका भ्रमरों को फूल के पास जाने से न रोक सका ।

लोग और भी अधिक उत्सुकता से संन्यासी का सदोपदेश सुनने जाने लगे । स्वामी दयानंद की धाक चारों और बैठ गई । जिस फौलादी ढाल से टकरा कर काशी के सुसंस्कृत तीर कुण्ठित हो गये, तिनकों की

क्या मजाल थी कि उस पर पड़ सकें। देश-देशांतर में इस शास्त्रार्थ का संवाद हवा की तरह फैल गया और अपने साथ स्वामी दयानंद की पाण्डित्यकीर्ति के सौरभ को भी लेता गया। रूढ़ि के गढ़ से स्वामी दयानंदजी की टक्कर का जो भयंकर शब्द हुआ उससे दिशाएं गूंज उठीं। आश्चर्य से देश ने देखा कि सदियों से अंधेरे में खड़ा किया हुआ कुरीतियों का मीनार ठोकर खाकर शब्द करता हुआ विश्वनाथपुरी की जलधारा में विलीन हो रहा है। स्वार्थ कांप उठा और सत्य का प्रकाश चमकने लगा।

शास्त्रार्थ के एक मास तक महर्षि दयानंदजी काशी में ही रहे और उन्हें काशी शास्त्रार्थ नाम से एक पुस्तक टिप्पणी सहित छापकर बँटवा दी। इस प्रकार स्वामी दयानंदजी ने सात बार काशी पर आक्रमण किया परन्तु कोई भी पौराणिक पंडित वेद से मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं कर सका। जैसे कि कुँवर सुखलाल आर्य मुसाफिर ने लिखा है :--

देखो स्वामी दयानंद क्या कर गया?
गुलशने हिन्द को फिर हरा कर गया।
कुल मुजाहिब में ऐसी मची खलबली।
गोया महशर का आलम बया कर गया।
तर्क के तीर बरसाए इस ज़ोर से।
होश पाखंडियों के हवा कर गया।
वो बुरे हैं जो कहते हैं उसको बुरा।
वो भला था हमारा भला कर गया।।

४. महर्षि दयानंद और आर्यसमाजसंस्थापना

महर्षि दयानंदजी ने आर्यसमाज की स्थापना करने से पूर्व अपने अनुयायियों के समक्ष बड़े मार्मिक व भावपूर्ण शब्दों में कहा था :--

भाई, हमारा कोई स्वतंत्र मत नहीं । मैं तो वेद के अधीन हूँ और हमारे भारत में पच्चीस करोड़ आर्य हैं । कई-कई बातों में किसी-किसी में कुछ-कुछ भेद हैं, सो विचार करने से आप ही छूट जायेगा । मैं संन्यासी हूँ और मेरा कर्त्तव्य यही है कि जो आप लोगों का अन्न खाता हूँ इसके बदले में जो सत्य समझता हूँ, उसका निर्भयता से उपदेश करता हूँ । मैं कुछ कीर्ति का रागी नहीं हूँ । चाहे कोई मेरी स्तुति करे वा निंदा करे, मैं अपना कर्त्तव्य समझ के धर्म बोध कराता हूँ । कोई चाहे माने या न माने । इसमें मेरी कोई हानि लाभ नहीं है ।

--मुम्बई, आर्यसमाज का इतिहास पृ. ४

(लेखक दामोदर सुन्दरदास)

स्वामी दयानंदजी के इस कथन को सुनकर एक व्यक्ति ने पूछा कि यदि आर्यसमाज की स्थापना करें तो क्या इसमें सार्वजनिक हानि होगी ?इसके उत्तर में स्वामी दयानंदजी ने कहा था :--

आप यदि समाज से पुरुषार्थ कर परोपकार कर सकते हो, समाज कर लो । इसमें मेरी कोई मनाही नहीं है । परन्तु इसमें यथोचित व्यवस्था न रक्खोगे तो आगे गड़बड़ अध्याय हो जाएगा । मैं तो जैसा अन्य को उपदेश देता हूँ वैसा ही आपको भी करूंगा और इतना लक्ष्य में रखना कि मेरा कोई स्वतंत्र मत नहीं है । और मैं सर्वज्ञ भी नहीं हूँ । इससे यदि कोई मेरी गलती आगे पाई जाये, युक्तिपूर्वक परीक्षा करके उस को भी सुधार लेना । यदि ऐसा न करोगे तो आगे यह भी एक मत हो जाएगा, और इसी प्रकार से ''बाबा वाक्यं प्रमाण'' करके इस भारत में नाना प्रकार के मतान्तर प्रचलित होके, भीतर-भीतर दुराग्रह रखके धर्मांध होके लड़के (लड़कर) नाना प्रकार की सद्विद्या का नाश करके

भारतवर्ष दुर्दशा को प्राप्त हुआ है। इसमें यह भी एक मत बढ़ेगा। मेरा अभिप्राय तो है कि इस भारतवर्ष में नाना प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित हैं वे भी सब वेदों को मानते हैं, इसमें वेदशास्त्र रूपी समुद्र में यह सब नदी नाव पुनः मिला देने से धर्म एक्यता होगी। और धर्म एक्यता से सांसारिक और व्यावहारिक सुधारणा होगी और इसमें कला कौशल आदि सब अभीष्ट सुधार होके मनुष्य मात्र का जीवन सफल होके अंत में अपना धर्म बल से अर्थ, काम और मोक्ष मिल सकता है।

--मुम्बई, आर्यसमाज का इतिहास पृ. 8

(लेखक दामोदर सुन्दरदास)

उपर्युक्त दोनों वक्तव्यों से स्वामी दयानंद के आर्यसमाज संस्थापना विषयक विचार स्फटिक तुल्य स्पष्ट हो जाते हैं। वे यह स्वीकार करके चलते हैं कि वेद से भिन्न उनका कोई अन्य मत नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जब आर्यसमाज की स्थापना को लेकर आर्यों में व्यापक सहमति देखी गई। इस प्रकार 10.4.1875 ई. दिन शनिवार सायंकाल 5 बजकर 30 मिनट पर मुम्बई के गिरगांव मुहल्ले में डॉ. मानिक चन्द की वाटिका में आर्यसमाज की स्थापना की गई। श्री गिरधारीलाल दयालदास कोठारी इसके सर्वप्रथम प्रधान और श्री सेवकलाल कृष्णदास सर्वप्रथम मंत्री चुने गये। उस समय आर्यसमाज के सदस्य की संख्या 100 थी। स्वामी दयानंदजी ने लोगों के आग्रह करने पर भी कोई पद स्वीकार नहीं किया। वे केवल साधारण सदस्य ही रहे। उस समय आर्य समाज के 28 नियम बनाये गये और बाद में संशोधन करके 10 नियम बना दिये गये।

हम देखते हैं कि महर्षि दयानंद जी ने सन् 1875 ई. में आर्यसमाज की स्थापना करके श्रेष्ठ समाज का सपना देखा था। परन्तु उनका यह सपना साकार नहीं हो पाया क्योंकि आर्य का अर्थ श्रेष्ठ है एवं समाज का अर्थ है समझ धारण करने वाला समूह अर्थात्

आर्यसमाज का अर्थ हुआ श्रेष्ठ समझ धारण करने वाला संगठन। परन्तु दारुण दुर्भाग्य का विषय है कि आर्यसमाज अपने 10 नियमों से हटकर कर्मकाण्ड में ही उलझ कर रहा गया है और इनके कार्यकर्त्ता स्वयं को आर्य न कहकर आर्यसमाजी कहते हैं जिससे उनमें आर्यत्व का अभाव हो गया है। परिणामस्वरूप आर्यसमाज में श्रेष्ठ समझ धारण करने वाले व्यक्ति बहुत कम हैं। यहाँ तक कि इसके अधिकारी एवं कार्यकर्त्ता चुनाव में पद के लिये लड़ते झगड़ते हैं और कई बार तो कोर्ट तक भी चले जाते हैं। आर्यसमाज केवल एक वेदमंदिर बन कर रह गया। अतः कुँवर सुखलाल आर्य मुसाफिर ने लिखा है--

जिन्हें संसार में संसार का उपकार करना था।
जिन्हें दुनियाँ में वैदिक धर्म का विस्तार करना था।।
अनाथों और अछूतों का जिन्हें उद्धार करना था।
जिन्हें निज देश और जाति का बेड़ा पार करना था।।
उन्हें दखो जो बाहम बरसरे पैकर बैठे हैं।
समाजों को मिटाने के लिए तैयार बैठे हैं।।

हम देखते हैं कि आज अधिकाँश आर्य समाजी महर्षि दयानंदजी के अनुगामी नहीं हैं अपितु अनुयायी मात्र रह गये हैं। यद्यपि ये दोनों शब्द समानार्थक प्रतीत होते हैं। परन्तु वैचारिक दृष्टि से इनमें बहुत बड़ा अन्तर है। अनुगामी वह व्यक्ति होता है जो कि अपने जीवन को मर्यादाओं, सिद्धान्तों एवं नियमों के अनुसार ढालता है। इसके विपरीत अनुयायी वह व्यक्ति होता है जोकि भीड़ में शामिल होकर जय जयकार करके अपनी स्थिति दर्ज कराता है। अतः अनुगामी बिरले व्यक्ति ही होते हैं और अनुयायी अनगिनत व्यक्ति होते हैं। जैसे महर्षि दयानंद जी के अनुगामी व्यक्ति थे गुरुदत्त, पं. लेखराम, स्वामी श्रद्धानंद, महात्मा हंसराज, आनंद स्वामी, स्वामी विद्यानंद 'विदेह' आदि। वे स्वाध्याय में लगे तो इंग्लैंड, फ्रांस, अमेरिका, जर्मनी आदि के विद्वान् हिल गये और निरुत्तर होने पर छुरे को हथियार बनाया। वे शुद्धि में लगे तो चोटी व जनेऊ की मांग बढ़

गई । वे शिक्षा में लगे तो डी.ए.वी. कालेज कन्या पाठशाला व गुरुकुलों के जाल बिछा कर रख दिये । वे राजनीति में आये तो लाठी गोली खाकर फांसी के फंदों पर झूल गये और अंग्रेज़ी सरकार को हिलाकर रख दिया ।

अतः हम समाज के समूचे आर्य समाजियों से सविनय निवेदन करते हैं कि वे आर्यसमाज को वेदमंदिर न समझें अपितु एक आंदोलन ही समझें जैसे महर्षि दयानंदजी ने चलाया था । आर्य समाजियों को चाहिए कि वे समूचे संसार के कल्याण के लिये कार्य करें तभी महर्षि दयानंदजी का सपना साकार होगा ।

———

9. महर्षि दयानंद और साहित्यसृजन

महर्षि दयानंदजी ने अपने जीवन में अनेक पुस्तकें लिखी। परन्तु इन में से मुख्य पुस्तकों का विवरण निम्नलिखित है :--

1. सत्यार्थप्रकाश : -- महर्षि दयानंदजी को सत्यार्थ- प्रकाश लिखने की प्रेरणा बनारस के कॉलटेर राजा जयकृष्णदासजी से मिली और राजाकृष्णदासजी ने पं. चन्द्रशेखर जी को ही सत्यार्थप्रकाश लिखवाने के लिए नियुक्त किया था जोकि महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे और जयकृष्णदासजी के कार्यालय में एक लिपिक के रूप में काम करते थे। इस प्रकार महर्षि दयानंद ने 12-6-1874 ई. दिन शुक्रवार को सत्यार्थप्रकाश लिखना आरंभ किया था और लगभग 3 मास में इसे लिखवा डाला। महर्षि दयानंदजी ने इसे बनारस से लिखवाना आरंभ किया और इसका अधिकतर भाग उदयपुर में लिखवाया गया। पहले इसमें 12 समुल्लास छपे थे क्योंकि राजाजयकृष्णदास जी ने 13वां व 14वां समुल्लास को अंग्रेज़ों के डर से नहीं छपवाया था क्योंकि वे सरकारी कर्मचारी थे। इसके बाद महर्षि दयानंदजी ने उदयपुर में बैठकर इसका संशोधन किया और यह उनकी मृत्यु के बाद 1884 ई. में छप सका।

सत्यार्थप्रकाश में 14 समुल्लास हैं और इसके दो भाग हैं--एक पूर्वार्द्ध और दूसरा उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध में 10 समुल्लास हैं जिनमें वैदिक सिद्धांतों का मंडन किया गया है और उत्तरार्द्ध में 4 समुल्लास हैं जिनमें वेद विरुद्ध बातों का खंडन किया गया है। इस ग्रंथ को लिखवाने के लिए महर्षि दयांनदजी को 2986 ग्रंथों का अध्ययन करना पड़ा था। इसमें 290 विविध ग्रंथों के 1886 प्रमाण, 1542 मंत्र और श्लोक उद्धृत किये गये। महर्षि दयानंदजी का सत्यार्थप्रकाश लिखवाने का मुख्योद्देश्य सत्य का प्रकाश करके अंधकार रूपी पाखंडों को जीवन से भगाना था क्योंकि वे एक महान् समाज सुधारक थे। अतः वे स्वयं सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में लिखते हैं :--

मेरा इस ग्रंथ को बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य का प्रकाश करना है ।

प्रस्तुत ग्रंथ के स्वाध्याय मात्र से संसार के प्रायः सभी मुख्य-मुख्य मतों एवं उनके सिद्धांतों का परिचयात्मक ज्ञान हो जाता है । तभी डॉ. भवानी लाल भारतीय इसको ''विश्वकोष'' के नाम से पुकारते हैं । इसी प्रकार एक हिन्दी कवि ने इसकी महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है :--

दुनियाँ सारी घूम ली कहीं पाया नहीं प्रकाश ।
दूर अंधेरा हुआ जब पढ़ा सत्यार्थप्रकाश ।।
सत्य तो यह है वेद का सार है सत्यार्थप्रकाश ।
कर रहा है सत्य का विस्तार सत्यार्थप्रकाश ।
रोकता है झूठ का प्रचार सत्यार्थप्रकाश ।।

2. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका :-- यह महर्षि दयानंदजी कृत एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है । इस ग्रंथ को उन्होंने 20-8-1876 ई. के दिन मंगलवार को पं. भीमसैन ज्वालादत आदि को लिखवाना आरम्भ किया था परन्तु इसकी समाप्ति का समय अज्ञात है । यह अनुमान लगाया जाता है कि इस ग्रंथ के लिखने में लगभग पौने तीन मास लगे थे । इसमें 36 अध्याय और 52 विषय हैं । वस्तुतः यह वेदों की कुंजी है और स्वामी विद्यानंद सरस्वती कृत भूमिकाभास्कर ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की कुंजी है जिसमें लेखक ने प्रस्तुत ग्रंथ की विशद् व्याख्या की है । अतः पंडित भगवद्दत अपने ग्रंथ वैदिक वाङ्मय का इतिहास (द्वितीय भाग) में लिखते हैं :--

दयानंद सरस्वतीजी की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका उनकी असाधारण योग्यता का जीवित प्रमाण है । वेद का अभ्यास करने वाले दयानंद सरस्वतीजी के विचार से कितने ही असहमत हों परन्तु भूमिका का पाठ करके वह एक बार कण्ठ से उनकी प्रशंसा करने लगते हैं ।

3. संस्कारविधि :-- यह भी महर्षि दयानंदजी का अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है । इसमें निम्नलिखित 16 विभिन्न संस्कारों का वर्णन किया गया है :--

1. गर्भाधान, 2. पुंसवन, 3. सीमन्तोन्नयन, 4. जातकर्म, 5. नामकरण, 6. निष्क्रमण, 7. अन्नप्राशन, 8. चुड़ाकर्म (मुण्डन), 9. कर्णवेध, 10. उपनयन, 11. वेदारम्भ, 12. समावर्त्तन, 13. विवाह, 14. वानप्रस्थ, 15. संन्यास, 16. अंत्येष्टि ।

परन्तु यह दारुण दुर्भाग्य का विषय है कि उपर्युक्त 16 संस्कारों में हमारे समाज में आज मुख्यतः तीन संस्कार--नामकरण, विवाह और अंत्येष्टि रह गये हैं । अतः इसी कारण मानव का पतन हो गया है ।

जैसे उपनिषदों, वेदांत और गीता को पौराणिकों की प्रस्थानत्रयी कहा जाता है उसी प्रकार सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि को आर्यसमाजियों की प्रस्थानत्रयी भी कहा जाता है ।

4. यजुर्वेदभाष्य :-- महर्षि दयानंद ने यजुर्वेद के 1975 मंत्रों का हिन्दी भाषा में भाष्य किया था ।

5. ऋग्वेदभाष्य :-- (6.62.2 तक) इसी प्रकार महर्षि दयानंद ने ऋग्वेद के 5649 मंत्रों (6 मण्डल, 62 सूक्त 2 मंत्र तक) का ही हिन्दी भाषा में भाष्य किया था ।

इस प्रकार महर्षि दयानंद ने वेदों के 20416 मंत्रों में से 7629 मंत्रों का ही भाष्य हिन्दी भाषा में किया और शेष 12792 वेद मंत्रों का भाष्य वे अकाल मृत्यु के कारण नहीं कर पाये । शेष वेद मंत्रों का भाष्य हिन्दी भाष्य में अन्य विद्वानों ने किया । इस प्रकार महर्षि दयानंद पहले व्यक्ति थे जिन्होंने वेदों का भाष्य हिन्दी भाषा में किया था ।

6. उपदेशमंजरी :-- महर्षि दयानंद ने अपने जीवन काल में हज़ारों प्रवचन किये परन्तु दुर्भाग्य से प्रायः अप्राप्य हैं । परन्तु उनके

प्रवचनों की उपदेशमंजरी नामक पुस्तक ही उपलब्ध है। इसमें केवल पूना में दिये गये 15 प्रवचन जैसे ईश्वरसिद्धि, धर्माधर्म, इतिहास विषयक आत्मकथन आदि ही संग्रहीत हैं। उनके ये सारे प्रवचन वेदानुकूल, रोचक एवं प्रभावोत्मक हैं।

7. पंचमहायज्ञविधि :-- इसमें ब्रह्मयज्ञ (संध्या) वेदयज्ञ (हवन, अग्निहोत्र), पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ (भूतयज्ञ) और अतिथियज्ञ (नृयज्ञ) का विधान है। प्रत्येक व्यक्ति को ये 5 यज्ञ प्रतिदिन करने चाहिये। परन्तु यह साधारण व्यक्ति के लिये आधुनिक युग में व्यावहारिक नहीं हैं। अतः साधारण व्यक्ति अपनी सुविधानुसार हिन्दी भाषा में भी यज्ञ कर सकता है। अतः महर्षि दयानंदजी पुस्तक के आरंभ में लिखते हैं :--

यह पुस्तक नित्यकर्मविधि का है। इसमें पंचमहायज्ञ का विधान है, जिनके नाम है--ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, नृयज्ञ।

8. व्यवहारभानु :-- इसमें अनेक प्रश्नोत्तरों एवं रोचक दृष्टांतों द्वारा बताया गया है कि व्यक्ति को दूसरों के कैसा धर्मानुसार व्यवहार करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे से अच्छा व्यवहार करना चाहिए। जैसे महर्षि दयानंदजी पुस्तक के आरंभ में ही लिखते हैं :--

ऐसा किस मनुष्य का आत्मा होगा कि जो सुखों को सिद्ध करने वाले व्यवहारों को छोड़कर उल्टे आचरण करने में प्रसन्न होगा।

9. आर्योद्देश्यरत्नमाला :-- इसमें विभिन्न 100 विषयों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है जैसे ईश्वर, धर्म, अधर्म, पुण्य, पाप, वेद, उपवेद, वेदांग, उपांग, नमस्ते आदि। इस प्रकार इसमें वैदिक मन्तव्यों की सरल परिभाषाएं प्रस्तुत की गई हैं। वस्तुतः सूत्र रूप में लेखक ने अनुपम परिभाषाएं लिखकर गागर में सागर भर दिया है।

10. आर्यभिविनय :-- यह एक प्रार्थना की पुस्तक है जिसमें ऋग्वेद के 53 मंत्र, यजुर्वेद के 55 मंत्र हैं। इस प्रकार इसमें कुल मिलाकर 108 मंत्र हैं। प्रत्येक मंत्र में ईश्वर की स्तुति एवं प्रार्थना अर्थसहित प्रस्तुत की गई है। प्रस्तुतसंग्रह अत्यंत रोचक एवं प्रभावोत्पादक है। वस्तुतः प्रस्तुतग्रंथ में उन्होंने जिन वेदमंत्रों को लेकर प्रार्थनाएं की हैं वे स्वयं में अद्वितीय हैं। इन प्रार्थनाओं में स्वराज्य प्राप्ति की प्रार्थनाएं तो हैं मगर साथ ही विदेशी सरकार के प्रति खुले रूप में विद्रोह की भावना भी अभिव्यक्त की गई हैं।

———

10. महर्षि दयानंद और आर्यसमाज के 10 नियम

आर्य समाज की स्थापना के समय मुम्बई में आर्यसमाज के 28 नियमों का निर्माण पारिख़ महाशय ने किया था। वे महर्षि दयानंद की रचना न थे। अतः सिद्धांतदृष्टि से वे अनार्ष कल्पना थे। यह उनकी प्रथम त्रुटि थी। यहाँ तक कि उनमें वेद को ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार नहीं किया गया था। तीसरे उनमें से कोई भी नियम ईश्वर को सृष्टि का रचयिता स्वीकार नहीं करता। चौथे उनमें कोई भी नियम समस्याओं की सम्मति से बदला जा सकता था। पांचवे इन में स्त्री को प्रधान एवं मंत्री बनने का अधिकार नहीं था। इन नियमों में संशोधन की आवश्यकता थी। अतः महर्षि दयानंद ने स्वयं 1877 ई. में लाहौर में इन नियमों का नूतन संस्कार करके आर्यसमाज के 10 नियमों का निर्माण किया जिनको आर्यसमाज की बाइबल के नाम से पुकारा जाता है। वे नियम ये हैं --

1. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।
2. ईश्वर सच्चिदानंदस्वरूप निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।
3. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।
4. सत्य को ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।
5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिए।

6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्योद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।
7. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये ।
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए ।
9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए । किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझना चाहिये ।
10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र हैं ।

आर्य समाज के दस नियमों का पद्यानुवाद :--

सब सद् विद्या और जो पदार्थ, विद्या से जाने जाते हैं ।
है आदि मूल सब का परमेश्वर, ऋषिवर यह बतलाते हैं । ।1।
वह प्रभु सत्-चित्-आनन्दस्वरूप और निराकार शुभ सत्ता है ।
है सर्वशक्ति का स्रोत दयालु, अनुपम, अज व अनन्ता है ।
वह निर्विकार, अनुपम, अनादि, सर्वोत्तम, न्याय विधाता है ।
सर्वेश्वर, सर्वाधार, अजर और अमर, अभय, सुखदाता है ।
सर्वान्तर्यामी है पवित्र वही, नित्य सृष्टि का कर्त्ता है ।
सब का उपास्य है, देव वही दुःख द्वंद्वसभी का हर्ता है । ।2।
सद् विद्याओं का स्रोत वेद, उनका पढ़ना, गुनना, सुनना ।
है आर्य मात्र का परमधर्म, सबको उनके रंग में रंगना है । ।3।
है सत्य असत्य जगत् में दो निर्णीत शुभाशुभ पथ माने ।
है आर्य मात्र का व्रत पुनीत वह सत्य सुने, माने जाने । ।4।
है धर्म प्राण आर्यों का जीवन, सत्य, असत्य विवेचन ही ।

रहकर असत्य से दूर सदा, शुभ सत पथ का निर्देशन है । ।5 ।
कर स्वस्थ देह, मन आत्मा और शुभ समाज गौरवशाली ।
करते जग का उपकार आर्य, बनकर जग उपवन के माली । ।6 ।
है प्रेम, धर्म और नीतिपूर्ण आर्यों का शुभ आचार सदा ।
और प्रीतिपूर्वक, धर्म सहित, शुभ यथायोग्य व्यवहार सदा । ।7 ।
खो अंधतमस् अविद्या को, विद्या का सूर्य प्रकाशित कर ।
आलोक ज्ञान को बिखराते हैं, आर्य सदा भूमण्डल पर । ।8 ।
निज उन्नति से संतुष्ट नहीं, रहते हैं आर्य कभी जग में ।
हैं प्राणि-मात्र को साथ लिये, चलो शुभ उन्नति के मार्ग में । ।9 ।
परतंत्र रहो सबके हितप्रद, सामाजिक नियम विधानों मे ।
बनकर स्वाधीन सदा विचारो, निज हित के सुखद तरानों में । । 10 ।

--रविदत्त शास्त्री

आर्यसमाज का नवीन संस्कार हो जाने पर लाहौर में 24-6-1977 ई. को रहीम खां की कोठी में आर्यसमाज की स्थापना की गई । उस समय महाशय मूलराज जी प्रधान और श्री साईंदास जी मंत्री बनाये गये । महर्षि दयानंदजी के जीवन काल में लगभग 80 आर्य समाजों की स्थापना हो चुकी थी । परन्तु अब तो भारत एवं विदेशों में लगभग 6000 आर्य समाजों की स्थापना हो चुकी है । फिर भी आज अंधविश्वास पाखण्ड और मूर्तिपूजा अधिक बढ़ गये हैं । इसका मुख्य कारण यह कि आर्य समाजों में चार दीवारी के भीतर ही प्रचार होता है न कि बाहर । दूसरे शास्त्रार्थ नहीं होते हैं ।

11. महर्षि दयानंद और व्याख्यानमाला

महर्षि दयानंदजी व्याख्यान के आरम्भ में पद्मासन बाँध एवं आँखें बंद करके प्रार्थना करते थे। सब से पूर्व ओ३म् का उच्चारण करते थे। यह गूंज मधुर व मनोहारिणी होती थी। उसके कर्णगोचर होते ही मन मूर्च्छित हो जाता था। ऐसा प्रतीत होता था कि कोई वादन-कला-निपुण व्यक्ति, सुर-मिली बीणा बजा रहा हो। ऐसा रसीला स्वर किसी ने कभी नहीं सुना था। उनका ओ३म्नाद बड़ा लम्बायमान होता था। उनके होंठ बंद कर लेने भी उसकी ध्वनि बड़ी देर तक होती रहती थी। इसके उपरांत वे मंत्रपाठ गायन किया करते थे। तत्पश्चात् नेत्र खोलकर एक बार सारी सभा पर नेत्र ज्योति डालते थे। उस समय अधिकांश व्यक्ति अत्यधिक प्रभावित हो जाते थे। लोगों के मन उनकी ओर स्वयं खिंच जाया करते थे।

महर्षि दयानंदजी की वाणी में इतनी सरलता एवं मधुरता थी कि जनता उनको आसानी से समझ जाती थी। क्योंकि वे अपनी वाणी में अद्भुतरस भर देते थे। जब वे वीरता का वर्णन करते थे तो उस समय श्रोताओं के हृदय उछलने लग जाते थे। भुजाएं फड़क उठती एवं ऊष्मा के आवेश से रक्त का वेग बढ़ जाया करता था। वे जब अपने व्याख्यान में राष्ट्र दुर्दशा का उल्लेख करते थे तो श्रोतागण करुणासागर में डूबने लगते थे। उनके नेत्रों से आँसुओं की झड़ी लग जाया करती थी। परन्तु जब वे शांत रस बरसाते थे तो सारी सभा शांत होकर सुना करती थी। उनके उपदेशों में हास्य रस भी पर्याप्त मात्रा में हुआ करता था। वे श्रोताओं को ऐसे दृष्टांत सुनाया करते थे जिनको सुनकर वे हँसते हुए लोटपोट हो जाते थे। वस्तुतः महर्षि दयानंदजी ने अपने जीवन काल में हज़ारों व्याख्यान दिये। परन्तु उनमें से अधिकाँश उपलब्ध नहीं हैं। जो व्याख्यान उपलब्ध हैं उनमें से मुख्य व्याख्यानों का सार निम्नलिखित हैं :--

1. व्याख्यान :-- महर्षि दयानंद 28-12-1874 ई. को

अहमदाबाद से होते हुये 31-12-1874 ई. को राजकोट पहुँचे और वहाँ कैम्प की धर्मशाला में ठहरे। वहाँ पर उनके निम्नलिखित 8 व्याख्यान हुये --

1. ईश्वरविषय, 2. धर्म, 3. वेदों का अनादित्व एवं अपौरुषेयत्व, 4. पुनर्जन्म का सिद्धान्त, 5. विद्या और अविद्या, 6. मुक्ति और बंध, 7. आर्यों का पुरातन इतिहास, 8. मानवी कर्त्तव्य।

2. व्याख्यान :-- 1875 ई. में पूना में महर्षि दयानंद ने लगभग 50 व्याख्यान दिये। इनमें से केवल निम्नलिखित 15 व्याख्यान ही लिपिबद्ध हो सके जोकि ''उपदेशमंजरी'' नामक पुस्तक में संग्रहित हैं :--

1. प्रवचन ईश्वरसिद्धि	**रविवार 4-7-1875 ई.**
2. प्रवचन ईश्वरविषयक प्रश्नोत्तर	**मंगलवार 6-7-1875 ई.**
3. प्रवचन धर्माधर्म प्रश्नोत्तर	**गुरुवार 8-7-1875 ई.**
4. प्रवचन धर्माधर्म प्रश्नोत्तरी	**शनिवार 10-7-1875 ई.**
5. प्रवचन वेदविषय	**मंगलवार 13-7-1875 ई.**
6. प्रवचन जन्मविषयक	**शनिवार 17-7-1875 ई.**
7. प्रवचन यज्ञ व संस्कार विषयक	**मंगलवार 20-7-1875 ई.**
8. प्रवचन इतिहास विषयक	**शनिवार 24-7-1875 ई.**
9. प्रवचन इतिहास विषयक	**रविवार 25-7-1875 ई.**
10. प्रवचन इतिहास विषयक	**मंगलवार 27-7-1875 ई.**
11. प्रवचन इतिहास विषयक	**गुरुवार 29-7-1875 ई.**
12. प्रवचन इतिहास विषयक	**शनिवार 31-7-1875 ई.**
13. प्रवचन अह्निक नित्यकर्म मुक्ति	**सोमवार 2-8-1875 ई.**
14. प्रवचन इतिहास विषयक	**मंगलवार 3-8-1875 ई.**
15. प्रवचन आत्मकथन	**बुधवार 4-8-1875 ई.**

महर्षि दयानंद ने पूना प्रवचनों के अंत में कहा था :--

अंत में ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि सर्वत्र आर्यसमाज कायम होकर मूर्तिपूजादि दुराचार दूर हो जावें। वेद शास्त्रों का सच्चा अर्थ सबकी समझ में आवे और उन्हीं के अनुसार लोगों का आचरण होकर देश की उन्नति होवे।

3. व्याख्यान :-- मुल्तान में महर्षि दयानंद के 36 व्याख्यान हुये जिनमें मुख्य निम्नलिखित हैं--

1. ब्राह्मणों की विद्या, 2. वेद ईश्वरीय ज्ञान है, 3. ईश्वर का निराकारत्व, 4. तिलक छाप का खण्डन, 5. मूर्तिपूजा और अवतारवाद की समीक्षा, 6. यज्ञोपवीत और हवन, 7. सृष्टिविद्या, 8. आवागमन व पुनर्जन्म, 9. ब्रह्मचर्य का महत्त्व, 10. योग।

4. व्याख्यान :-- महर्षि दयानंदजी 14-11-1878 ई. गुरुवार को अजमेर आकर सेठ रामप्रसाद के बाग़ में ठहरे। वहाँ पर उन्होंने निम्नलिखित 7 व्याख्यान दिये--

1. ईश्वर का एकत्व और उसका अस्तित्व, 2. वेदों का ईश्वरीय ज्ञान होना, 3. वेदों में विज्ञान, 4. बाइबल और क़ुरान की समालोचना 5. सतीप्रथा तथा अन्य सामाजिक बुराइयाँ, 6. जन्म एवं मृत्यु, 7. आर्यों का उत्थान एवं पतन।

5. व्याख्यान :-- 30.12.1881 ई. शुक्रवार को महर्षि दयानंदजी ने मुम्बई में अंतिम बार पदार्पण किया। वहाँ पर उनके अनेकों व्याख्यान हुए जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं--

1. धर्मोन्नति, 2. अहिंसा और ईसाईमत, 3. मनुष्योन्नति, 4. अवतारवाद, 5. पुनर्जन्म तथा सृष्टिविद्या, 6. मादक द्रव निषेध, 7. वेदविषय, 8. आर्यसमाज और फियोसिफिकल सोसायटी, 9. आर्यसमाज तथा ब्रह्मसमाज के नियम, 10. बाल विवाह, 11. देशोन्नति, 12. योग आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महर्षि दयानंदजी जनता को विज्ञापनों द्वारा सूचना देकर प्रवचन देते थे। श्रोता भी अतिश्य उत्साह से सत्संग में आते और एकाग्र भावना से प्रवचन सुनते थे। सभी श्रोता नीरव निस्तब्ध एवं निर्निमेष होकर अपने ललचाये हुए लोचनों से स्वामी दयानंदजी की मंगलमयी मनोहर मूर्ति का दर्शन किया करते थे। सत्संग भवन में चतुर्दिक चुप्पी का अचल भाव छाया रहता था। प्रवचन सुनते हुए श्रोतागण तृप्त नहीं होते थे। वे यही चाहते थे कि स्वामी दयानंदजी सुनाते ही जाएं और प्रवचन कभी समाप्त न हों।

———————

12. महर्षि दयानंद और राष्ट्रवाद

हमारे देश में कबीर, सुर, तुलसी, दादुदयाल अनेक उच्चकोटि के संत हुये हैं, इनमें से किसी भी संत ने राष्ट्रहित की बात नहीं कहीं। परन्तु महर्षिदयानंदजी ने श्रीराम एवं श्रीकृष्ण की भाँति राष्ट्रहित की बात कही थी क्योंकि वे राष्ट्रवादी संत थे। अतः उन्होंने हरिद्वार में कहा था :--

मेरी आँखें उस दिन को देखने के लिए तरस रही हैं जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा अटक से कटक तक आर्यों का एक छत्र राज्य स्थापित होगा।

इसी प्रकार उन्होंने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है :--

जो आप चाहें, सत्य यह है कि अपना राज्य सबसे उत्तम है।

इसलिए ही श्री बलण्ट लिखते हैं :--

Dayanand was not merely a religious reformer, he was also a great patriot, It would be fair to say that with him religious reform was a more means to natural reform.

Consus report of 1901 Vol XV
Part I Chapter IV P. 135.

दयानंद केवल सुधारक नहीं थे। वे एक महान् देशभक्त भी थे। यह कहना ठीक होगा कि उन्होंने धार्मिक सुधार को राष्ट्रीय सुधार के साधन के रूप में ही अपनाया था।

महर्षि दयानंदजी का लगभग तीन वर्ष का गुप्त काल है। इसलिए वे लोगों में राष्ट्रप्रेम और स्वतंत्रता की भावना भरते रहे। वे कहा करते थे :--

स्वतंत्रता की सूखी रोटी पराधीन के हलुवे-पूड़ी से बेहत्तर है।

इसलिए फ्राँसीसी लेखक रोमाँरोलाँ ने उन्हें ''पुनर्जागरण का अग्रदूत'', ऐनीबीसेंट उन्हें ''भारतवासियों के लिये स्वतंत्रता का प्रथम

उद्घोषक'' और लोकमान्य तिलक ''स्वाधीनता का प्रथम संदेशवाहक'' मानते हैं ।

अकेले सत्यार्थप्रकाश में महर्षि का कोमल हृदय राष्ट्र की पराधीनता के लिये 18 स्थलों पर रोया था । क्रांतिकारी विस्मिल, प्रो. रंगाश्री, महावीर त्यागी, दादा नौरोजी आदि को इसी ग्रंथ के स्वाध्याय से स्वराज्य समर में कूदने की शुभ प्रेरणा मिली थी । अतः डॉ. रमेशचन्द्र मजुमदार ने लिखा है :--

Political independence was one of the first objectives of Dayanand. He was the first man to use the word "Swarajya". He was the first to insist on the people using only swadeshi things. He was the first to recongnise Hindi of the National language of India.

राजनैतिक स्वतंत्रता दयानंद का प्रथम उद्देश्य था । वे 'स्वराज' शब्द का प्रयोग करने वाले प्रथम पुरुष थे, वे स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करने पर जोर देने वाले प्रथम पुरुष थे । वे हिन्दी को भारत की राष्ट्रीय भाषा के रूप में मान्यता देने वाले भी प्रथम पुरुष थे ।

इसलिए भूतपूर्व लोकसभा अध्यक्ष अनाश्यंन आयंकर लिखते हैं--

गांधी जी राष्ट्र के पिता थे तो महर्षि दयानंद पितामह थे । वह हमारी राष्ट्रीय प्रवृतियों और स्वतंत्रता आंदोलन के आद्य प्रवर्तक थे ।

अंत में मैं आपको इसके विषय में महर्षि दयानंदजी के समकालीन भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र जी की निम्नलिखित पंक्तियाँ स्मरण करवाता हूँ :--

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है ।

वह नर नहीं पशु है निरा और मृतक समान है ।

---

13. महर्षि दयानंद महान् समाजसुधारक के रूप में

महर्षि दयानंदजी राजाराममोहन राय, केशवचन्द्र, स्वामीविवेकानंद की भाँति 19वीं शताब्दी के महान् समाजसुधारक थे। उनके काल में अनेक सामाजिक कुरीतियाँ जैसे बालविवाह, वृद्धविवाह, स्त्रीशिक्षा का अभाव, सतीप्रथा, कन्यावध, यज्ञों में पशुहिंसा, वेश्यावृत्ति, अवतारवाद, मूर्तिपूजा आदि कुप्रथाएं प्रचलित थी। इसलिए उन्होंने इनके उन्मूलन करने के लिए भरसक प्रयत्न किये। क्योंकि वे सारे संसार को आर्य बनाना चाहते थे। इसलिए स्वामी सत्यजी महाराज लिखते हैं :--

स्वामी दयानंदजी अपने युग के सबसे बड़े समाज संचालक थे। वे अद्वितीय सुधारक थे। उन्होंने करोड़ों मनुष्यों की हितकामना से कार्य किया।

--श्रीमद्दयानंदप्रकाश, पृ. 11

इसी प्रकार कर्नल आल्कॉट भी लिखते हैं :--

आधुनिक भारत के लूथर की पदवी अनेक सुधारकों को, विशेषतः राजा राममोहनराय को दी गई है। किन्तु मेरी सम्मति में स्वामी दयानंदजी ही इस उपाधि के सर्वाधिक उपयुक्त हैं।

———

14. महर्षि दयानंद का हिन्दी प्रेम

महर्षि दयानंदजी ने अपने भाषणों में हिन्दी का व्यवहार श्रीकेशवचंद्रसेन के सुझाव पर आरंभ किया था । वे प्रथम भारतीय थे जिन्होंने हिन्दी को देश की राष्ट्रभाषा बनाने की बात रखी । यहाँ तक कि महारानी विकटोरिया के पास भेजने के लिए उन्होंने एक स्मरणपत्र भी तैयार कराया था, जिसमें प्रार्थना की गई थी कि केवल एक ही देवनागरी लिपि को भारत की राष्ट्रीय लिपि घोषित कर दिया जाए और सभी प्रादेशिक भाषाओं के लिए उसी का प्रयोग करने का कहा जाए । उन्होंने अपने इस प्रस्ताव द्वारा लिखा कि सभी भारतीय विद्यार्थियों को अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त कम से कम एक और भारतीय भाषा सिखाई जानी चाहिये । भावी प्रशासकों का मार्ग साफ कर दिया था । इस प्रकार उन्हें भारत सरकार के त्रिभाषा सूत्र का वास्तविक पथ प्रदर्शक कहा जा सकता है । उनके हृदय में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति विशेष प्रेम था । तभी तो वे कहते थे :--

दयानंद के नेत्र तो वह दिन देखना चाहते हैं कि जब काश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक नागरी अक्षरों का प्रचार होगा । मैंने आर्यवर्त्त भर में भाषा का ऐक्य सम्पादन करने के लिए ही अपने सकल ग्रंथ आर्यभाषा में लिखे और प्रकाशित किये हैं ।

महर्षि दयानंद ने यहाँ तक लिखा है :--

एक दिन आयेगा जब आर्यभाषा न केवल आर्यवर्त्त की अपितु विश्व की भाषा बनेगी ।

इसके विषय में मैं आपको महर्षि दयानंदजी के समकालीन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की निम्नलिखित पंक्तियाँ स्मरण कराता है :--

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल ।

बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटे न हिये की शूल । ।

अंततः महर्षि दयानंदजी के भरसक प्रयत्नों एवं आशीर्वाद से

14.9.1949 ई. को हिन्दी देश की राष्ट्रीय भाषा बन गई। परन्तु यह दारुण दुर्भाग्य का विषय कि आज भी दिन प्रतिदिन विदेशी भाषा अंग्रेज़ी का प्रचलन बढ़ रहा है। यहाँ तक कि माता-पिता अपने बच्चों को अंग्रेज़ी शिक्षा ही दिलवाना चाहते हैं न कि हिन्दी क्योंकि इसका संबंध रोज़ीरोटी से है। वस्तुतः स्कूलों में आरम्भ से ही बच्चों को हिन्दी और अंग्रेज़ी पढ़ानी चाहिए। यदि हम ऐसा नहीं करते तो यह राष्ट्रभाषा हिन्दी का अपमान है। अपितु हमें अंग्रेज़ी की अपेक्षा हिन्दी को प्राथमिकता देनी चाहिये जैसे महर्षि दयानंदजी चाहते थे।

15. महर्षि दयानंद का अद्‌भुत क्षमादान

महर्षि दयानंदजी को 17 बार विष दिया गया और 12 बार उन पर साँप छोड़े गये। कई बार पानी में डूबाकर मारने का भी प्रयत्न किया गया। परन्तु वे इतने महान् थे कि उन्होंने सब शत्रुओं को क्षमा कर दिया। उनके जीवन की कुछ अद्‌भुत क्षमा दान की घटनाएं निम्नलिखित हैं--

1. अनुपशहर की एक दिन की बात है कि एक ब्राह्मण ने उन्हें पान पेश किया। उन्होंने यह अपने मुख में रख लिया। उसके चबाते समय उन्हें यह प्रतीत हुआ कि पान विषयुक्त है। अतः वे शीघ्र ही गंगा के पार चले गये तथा वस्ती एवं न्यौली क्रिया द्वारा विष के कुप्रभाव को दूर करके पुनः अपने आसन पर आकर बैठ गये। परन्तु इस घटना का पता उनके भक्त सय्यद मुहम्मद तहसीलदार को लगा और उसने उस ब्राह्मण को कैद में डाल दिया। इस समाचार से प्रसन्न होकर वे महर्षि दयानंद जी के पास आये। परन्तु यह बात सुनने के बाद वे तहसीलदार से नाराज हो गये। जब तहसीलदार ने नाराजग़ी का कारण पूछा--तो महर्षि दयानंद ने उत्तर दिया :--

मैंने सुना है कि आपने मेरे कारण एक व्यक्ति को कारागार में डाल दिया है। मैं संसार को कैद कराने नहीं अपितु कैद से छुड़ाने आया हूं। यदि दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता तो हम अपनी श्रेष्ठता का परित्याग क्यों करें।

ये शब्द सुनकर तहसीलदार आश्चर्यचकित रह गया क्योंकि उसने आज तक क्षमा का ऐसा उदाहरण नहीं देखा था। वह महर्षि को प्रणाम करके चला गया और जाते ही उस ब्राह्मण को स्वतंत्र कर दिया।

जोधपुर में 29.9.1883 ई. में रात्रि के समय शाहपुर निवासी घौड़मिश्र नामक रसोइये ने विष दे दिया। यह विष संखिये का था।

परन्तु महर्षि दयानंदजी ने अपनी दिव्य दृष्टि से अपने विषदाता घौड़मिश्र को पकड़ लिया। उसने अपराध भी स्वीकार कर लिया और महर्षि दयानंदजी ने उसे तू तक नहीं कही थी। अपितु वे अद्‌भुत क्षमा दान करते हुए बोले :--

घौड़मिश्र! मेरे इस समय मरने से मेरा कार्य सर्वथा अधूरा रह गया। तुम नहीं जानते इससे लोकहित की कितनी भारी हानि हुई है, अच्छा विधाता के विधान में ऐसा ही होना था। घौड़मिश्र! लो ये 500 रुपये मैं तुम्हें देता हूँ, तुम्हारे काम आयेंगे। तुम यहाँ से नेपाल भाग जाओ। अन्यथा मेरे भक्त पता लगने पर तुझे क्षमा नहीं करेंगे।

महर्षिदयानंद, अद्‌भुत है तेरी क्षमा! विष दाता को भी प्राणदान। महर्षिदयानंद तू धन्य है।

---

16. महर्षि दयानंद और गोरक्षा

महर्षि दयानंदजी ने गोरक्षा के लिए ''गोरक्षण और कृषिसुधार'' संगठन की स्थापना की थी। उन्होंने कहा कि जब तक युवावस्था की गायें एवं बैल क़त्ल करने से नहीं बचाये जाएंगे तब तक गोरक्षा का कोई लाभ ही नहीं हो सकेगा। उनका बचाव केवल कृषि सुधार से ही हो सकता है। उनकी कुशाग्र बुद्धि ने यह बात जान ली थी कि वास्तव में गोरक्षा तभी होगी जब सभायें गोजाति मात्र की रक्षा करेंगी। शहरों में अच्छे दूध का प्रबन्ध करने के लिए हज़ारों गायें पाली जानी चाहिए। उन्होंने गोरक्षा पर सैकड़ों व्याख्यान दिये। हज़ारों मुसलमान और इसाइयों को गाय की उपयोगिता निश्चित् कराई। उन्होंने कर्नल ब्रुक से कहा था :--

आप हमारे देश में नुकसान का काम करते हैं। एक गौ से इतने अधिक आदमियों को लाभ पहुँचता है, परन्तु आप अकेले मारकर खा जाते हो।

1881 ई. में ''गोकरुणानिधि'' नामक एक पुस्तक भी लिखी जिसमें गाय के अनेक लाभ बतलाये गये। उन्होंने गोवध बंद कराने के लिये एक करोड़ हस्ताक्षर करवाकर महारानी विकटोरिया को भेजने का अभियान आरम्भ किया था। यहाँ तक कि उन्होंने 3.50 लाख हस्ताक्षर एकत्र भी कर लिये थे। परन्तु उनकी असामयिक मृत्यु के कारण यह अभियान रुक गया था। उन्होंने गोरक्षा पर प्रभावशाली लेख भी प्रकाशित किये। इसके अतिरिक्त उन्होंने राष्ट्रपरक वेदभाष्य कर वेद मंत्रों का सत्य अर्थ जनता के समक्ष प्रस्तुत किया जिससे गोहत्या करने वाले सभी आलोचकों का मुँह बंद कर दिया। उन्होंने अहिवाल नरेश राव युधिष्ठिर को प्रेरणा देकर भारत की पहली गोशाला की स्थापना 1878 ई. में करवाई ताकि गोमाता का संरक्षण हो सके।

परन्तु महर्षि के भरसक प्रयत्नों के बावजूद गोहत्या बंद नहीं

हुई। आज कल गोहत्या अत्यधिक बढ़ गई है। गोरक्षा के लिये स्थान-स्थान पर गोशालाएं भी खोली गई हैं परन्तु फिर भी गोहत्या बंद नहीं हुई है। हमारे राष्ट्र में गोहत्या होना कलंक है और इसे सरकार को कानून बना कर शीघ्रातिशीघ्र बंद कर देना चाहिए। शेर के स्थान पर गाय को राष्ट्रीय पशु घोषित करना चाहिये क्योंकि मानव जाति के लिये शेर की अपेक्षा गाय अधिक उपयोगी पशु है।

17. महर्षि दयानंद और ब्रह्मचर्य

महर्षि दयानंदजी उदारवेत्ता ब्रह्मचारी थे। उनमें इसलिए ही अत्यधिक बल था। परन्तु आज राष्ट्र में ब्रह्मचर्य का पतन हो चुका था। अतः एक दिन उन्होंने चितौड़ में आत्मनंद से कहा था :--

आत्मनंद! ब्रह्मचर्य का नाश होने से भारतवर्ष का नाश हुआ है और ब्रह्मचर्य का उद्धार करने से ही फिर देश का उद्धार हो सकेगा।

महर्षि दयानंद के जीवन की ब्रह्मचर्य के विषय की मुख्य घटनाएं निम्नलिखित हैं :--

1. जालंधर में एक दिन सरदार विक्रम सिंह ने पूछा था कि कहा जाता है कि ब्रह्मचर्य से व्यक्ति महाबलि बन जाता है, क्या यह सत्य है?उन्होंने उत्तर दिया कि यह बात सत्य है। इसके पश्चात् सरदार विक्रम सिंह बोले कि आप तो ब्रह्मचारी हैं परन्तु मुझे आप में कोई विशेष बल दिखाई नहीं देता। परन्तु उन्होंने इस बात का कोई भी उत्तर नहीं दिया। सरदार विक्रम सिंह सत्संग में बैठे रहे। परन्तु जब वे अपनी गाड़ी पर सवार हो गये तो महर्षि दयानंदजी ने पीछे से उनकी गाड़ी को पकड़ लिया। सरदार विक्रम सिंह ने घोड़ों को अनेक कोड़े मारे। परन्तु वे गाड़ी को खींच नहीं सके। जब उन्होंने पीछे मुड़कर देखा तो महर्षि दयानंदजी ने गाड़ी को छोड़ दिया और कहा कि ब्रह्मचर्य का प्रमाण आपको मिल गया। सरदार विक्रम सिंह उनके ब्रह्मचर्य की अपार शक्ति को देखकर आश्चर्यचकित रह गये।

2. एक दिन गुजरावाला की घटना है कि महर्षि दयानंदजी एक सभा में प्रवचन करते हुए कहा था--

मैं भी 52 वर्ष का हो चुका हूँ। मुझे विश्वास है कि मैंने आज तक अखंड ब्रह्मचर्य का पालन किया है जिसे अपनी अपनी शक्ति पर अभिमान हो वह मेरे समीप आये, मैं उसका हाथ पकड़ता हूँ और वह मुझसे हाथ छुड़ाये अथवा मैं अपना हाथ उठाता हूँ वह उसे नीचे करके दिखाये।

उस भरी सभा में अनेक पहलवान उपस्थित थे परन्तु किसी भी व्यक्ति का आगे आने का साहस नहीं हुआ ।

3. एक बार की घटना है कि महर्षि दयानंद ने अजमेर में बालविवाह का खण्डन और ब्रह्मचर्य का मण्डन किया था । अपने संबंध में उन्होंने बोलते हुए कहा था :--

मैंने अपने जीवन में पूर्ण ब्रह्मचर्य के पालन का व्रत लिया है और मेरे शव को उठाने में 16 आदमी लगेंगे ।

हम देखते हैं कि संसार के दुःखी लोगों के दुःख दूर करने के लिए महर्षि दयानंदजी ने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया था न कि और किसी स्वार्थ की पूर्ति के लिए । जैसे पं. प्रकाशचन्द्र कविरत्न अपनी कविता ''महर्षि महिमा'' में लिखते हैं--

सुना है पाला ब्रह्मचर्य परशुराम ने था
पृथ्वी से नाम क्षत्रिय-वंश का मिटाने को
पाला था ब्रह्मचर्य भीष्मपितामह ने भी
अपने शान्तनु श्रीपिता को सुखी बनाने को
किन्तु गुरुदेव स्वामी दयानंदजी ने
पाला था ब्रह्मचर्य जगके दुःख मिटाने को ।।

18. महर्षि दयानंद और योग

स्वामी पूर्णानंद से संन्यास की दीक्षा लेकर ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य स्वामी दयानंदजी बन गये। इसके पश्चात् वे चाणोद चले गये। यहाँ पर उन्हें शिवानंदगिरि एवं ज्वालानंदपुरी नामक दो योगी मिले। स्वामी दयानंदजी ने इन यौगिक क्रियाओं की आलोचना भी की थी। उन्होंने एक महीने बाद अहमदाबाद के दुग्धैश्वर महादेव के मंदिर में स्वामी दयानंदजी को मिलने के लिए कहा। अतः स्वामी दयानंदजी अहमदाबाद जाकर उनसे मिले और उन्होंने स्वामी दयानंदजी को योग सिखाया। इस प्रकार इन योगियों ने स्वामी दयानंदजी को योग का ज्ञान कराया उसके लिए वे आजन्म इन योगियों को याद करते रहे। एक स्थान इनके विषय में स्वामी दयानंजी लिखते हैं :--

वहाँ उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की और अपने वचनानुसार मुझको निहाल कर दिया अर्थात् उन्हीं महात्मा योगियों के प्रभाव से मुझ को पूर्ण योग विद्या और साधनक्रिया अच्छी प्रकार विदित हो गई इसलिए मैं उनका अत्यंत कृतज्ञ हूँ।

लेखराम कृत महर्षि दयानंद सरस्वती
का जीवनचरित पृष्ठ 31

वस्तुतः महर्षि दयानंदजी महान् योगी थे। यहाँ तक कि वे दिन में 18 घंटे की समाधि भी लगा लिया करते थे।

———

19. महर्षि दयानंद और उनकी प्रकृति

महर्षि दयानंदजी का स्वभाव बहुत शांत था। वे कभी भी नाराज नहीं होते थे। अपशब्द कभी भी उनके मुख से नहीं निकलते थे। उनकी मधुवर्षिणी वाणी में अश्लीलता का सर्वथा अभाव रहता था। उनको लोगों ने अनेक कष्ट पहुँचाये परन्तु उन्होंने कभी किसी को ताड़ना नहीं दी थी। वे हुंकार से ही दुष्टों को डरा दिया करते थे। वे केवल विभीषिका ही दिखाते थे। यहाँ तक कि लोग लट्ठ से, तलवार से, ईंट-पत्थर एवं विष तक से उनको मारने पर तुले रहते थे। यहाँ तक 50-50 व्यक्ति एकत्रित होकर उनको मारने के लिए आते थे। वे अनेक स्थानों पर इनको मारने का षडयंत्र किया करते थे। परंतु इसके विपरीत वे अकेले कोपीनमात्रधारी गंगा के किनारे गाँव-गाँव में चक्कर लगाकर प्रचार किया करते थे। उनमें अद्‌भुत साहस और अलौकिक धर्म था।

लोग महर्षि दयानंदजी के सुंदर मुखकमल को देखते तृप्त न होते थे। उनके विकसित एवं विशाल नेत्र कृपारसपूर्ण होते थे। उनमें अद्‌भुत आकर्षण था। उनकी नाक उन्नत और अत्यंत सुंदर थी। दोनों भौहें अत्यधिक सुहावनी थी तथा उनके ऊपर अर्द्धचन्द्रकार भाल बहुत भला प्रतीत होता था। उन का शरीर अत्यधिक सुगठित एवं सुडौल था। उनकी दोनों भुजाएं हाथी की सूंड की भाँति लम्बायमान थी और वे घुटनों को स्पर्श करती थी। उनके हाथों की हथेलियाँ लम्बायमान अँगुलियों सहित तप्त ताम्र की भाँति दिखाई देती थीं। अरुणवर्ण नख-शोभा बढ़ा रहे थे। उनका वक्षस्थल अत्यंत विस्तृत था। उनकी जंघाएं कदलीस्तम्भ की भाँति सुगठित थी। उनका अंग-प्रत्यंग उनके महोदर रूप के अनुरूप था। ऐसा मालूम होता था

कि विधाता ने उनकी तेजस्विनी, प्रभावपूर्ण एवं अद्‌भुत प्रतिभा बनाई हो। अतः पंडित प्रकाश चंद्र कविरत्न ने अपनी कविता में ''महर्षि महिमा'' में कितना सुंदर लिखा है :--

जैसे कवि अपने मधुर छंद पर निछावर है
जैसे प्रेमी चकोर चंद पर निछावर है
भृंग अरविंद के मकरंद पर निछावर है
वैसे दिल मेरा दयानंद देव पर निछावर है।

20. महर्षि दयानंद का महाप्रस्थान

महर्षि दयानंदजी जिस समय उदयपुर में प्रवचन दे रहे थे। उन्हीं दिनों सर्वश्री प्रतापसिंह और रावराजा तेजसिंह के प्रार्थना पत्र आये थे। उनमें उन्होंने जोधपुर पधारने की प्रार्थना महर्षि दयानंदजी से की थी। इस प्रकार स्वामी दयानंदजी ने शाहपुरा के पश्चात् जोधपुर जाने का निमंत्रण-पत्र स्वीकार कर लिया था। स्वामी दयानंदजी का जोधपुर जाने के विचार को देखकर शाहपुरा नरेश ने कहा था :--

भगवन्! राजा लोग भोगविलास और मनमाने आमोद-प्रमोद में निमग्न रहा करते हैं। जहाँ आप पधारने लगे हैं। वहाँ वारांगनाओं का अधिक खण्डन न कीजियेगा।

स्वामी दयानंदजी ने शाहपुर नरेश को इस का उत्तर इस प्रकार दिया था :--

कंटीले वृक्षों को काटने के लिए तो तीक्ष्ण शस्त्रों की आवश्यकता होती है। हाथ के नाखून काटने वाले नहुरने से वे नहीं काटे जाते।

इसी प्रकार अजमेर के लोगों ने भी जोधपुर को राक्षस राज्य कहकर पुकारा और स्वामी दयानंदजी के अहित की कल्पना पर दुःख का अनुभव किया। परन्तु इसका उत्तर उन्होंने इस प्रकार दिया :--

यदि लोग हमारी अंगुलियों की बत्तियाँ बनाकर जला भी दें, तो भी कोई चिंता नहीं। मैं वहाँ जाकर अवश्य सत्योपदेश दूँगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी दयानंदजी शाहपुरा से चलकर अजमेर ठहर कर जोधपुर जाने के लिये 29.5.1883 ई. को मंगलवार को पाली पहुँचे। पाली और जोधपुर की दूरी 45 मील है। जोधपुर नरेश ने पाली से जोधपुर जाने के लिए स्वामी दयानंदजी के लिये सब सुविधाएं कर दी थी। इस प्रकार स्वामी दयानंदजी 31.5. 1883 ई. को गुरुवार को जोधपुर पहुँचे जहाँ रावराजा जवान सिंह ने

उनका भव्य स्वागत किया ।

स्वामी दयानंदजी को जोधपुर में नज़रबाग़ के सामने मियां फैजुल्ला खां की कोठी में ठहराया गया । उनके पहुँचने का समाचार सुनकर कर्नल प्रतापसिंह व रावराजा तेजासिंह उनके दर्शनार्थ वहाँ पहुँचे । कर्नल प्रताप सिंह ने एक स्वर्णमुद्रा और 25 रुपये भेंट के रूप में दिये । स्वामी दयानंदजी के भोजन एवं सुरक्षा के लिए 6 सिपाही और 1 हवलदार का पहरा लगा दिया गया । सेवा के लिए 4 सेवक भी लगा दिये गये । महाराजा जसवंत सिंह स्वामी दयानंदजी के पास 26.6.1883 ई. के मिलने के लिए आये और 5 स्वर्ण मुद्राएं व 25 रुपये भेंट में दिये । महाराजा जसवंत सिंह जब फर्श पर ही बैठ गये तो उन्होंने कहा :--

आप हमारे स्वामी हैं और हम आपके सेवक हैं । अतः आपके सामने नीचे आसन पर बैठने में ही हमारी शोभा है ।

कुशल-क्षेम पूछने के बाद महाराजा जसवंतसिंह ने स्वामी दयानंदजी से उपदेश सुनने की इच्छा प्रकट की । इस पर उन्होंने मनुस्मृति के अनुसार राजधर्म का उपदेश दिया । महाराजा ने उपदेश सुनकर कहा था :--

आप का यहाँ पदार्पण हमारे भाग्य का शुभ सूचक है । श्री चरणों में यह निवेदन है कि जब तक आप यहाँ वास करें और अपने उपदेशामृत से लोगों को कृतार्थ करते रहे ।

अगले दिन से स्वामी दयानंदजी के प्रवचन मियां फैजुल्ला खां की कोठी में सायंकाल 4 बजे से 6 बजे तक होने लगे । उनका प्रथम प्रवचन का विषय था-- ''ईश्वर'' जिसमें उन्होंने ईश्वर के स्वरूप का वर्णन ऐसे अद्‌भुत प्रकार से किया कि भक्तिभाव के भादों की झड़ी लग गई । राव राजा ने सिर झुका दिया । सभी उपस्थित सभ्य चातक की भाँति स्वामी दयानंदजी के वचनबिन्दु के प्यासे थे, चकोर की भाँति तृषित एवं निर्निमेष नयनों से उनके विमल मुख चन्द्र को निहार रहे थे ।

महर्षि दयानंदजी ने जोधपुर में मुस्लिम धर्म पर आलोचनात्मक व्याख्यान दिया जिस को सुनकर फैजल्ला खां अत्यंत क्रोधित हो गये और कहा :--

यदि आज मुसलमानों का शासन होता, तो आपके इस्लाम खण्डन को कदापि सहन नहीं किया जाता और आपका इस प्रकार भाषण करना कठिन हो जाता।

इस पर महर्षि दयानंद ने उत्तर दिया :--

मैं यदि मुसलमान शासनकाल में होता, तब भी इसी प्रकार की बात कहता और यदि औरंगज़ेब की परम्परा का कोई शासक मेरा अनिष्ट चिंतन करता तो मैं भी किसी शिवा दुर्गादास अथवा राजसिंह जैसे क्षत्रिय को आगे कर देता जो उसे मज़ा चखा देता।

स्वामी दयानंदजी के दर्शनों के लिये महाराजा जसवंत सिंह तीन बार उनके आसन पर पधारे और तीन ही बार उन्हें अपने निवासस्थान पर आमंत्रित किया गया। उधर जोधपुर में स्वामी दयानंदजी के शत्रुओं की संख्या बढ़ रही थी कि एक और घटना घट गई जिसने विरोधियों के बल को बहुत बढ़ा दिया। जोधपुर के महाराजा जसवंत सिंह का नन्हीं जान नामक वेश्या से गहरा संबंध था। एक दिन अपने निश्चित् नियम के अनुसार स्वामी दयानंदजी दरबार में पहुँचे। उस समय महाराज जसवंत सिंह के पास नन्हींजान आई हुई थी। स्वामी दयानंदजी के आने का समय जानकर महाराज जसवंत सिंह उसे डोली में रवाना कर रहे थे। डोली उठने से पूर्व ही स्वामी दयानंदजी को समीप आता देखकर महाराज जसवंत सिंह घबरा गये और डोली को स्वयं कंधा लगाकर उठा लिया। नन्हीजान वेश्या तो वहाँ से चली गई परन्तु उस दृश्य को देखकर स्वामी दयानंदजी का हृदय अत्यंत दुःखी हुआ। वेश्या प्रेम के घोर घृणित कुव्यसन का वे वैसे ही कड़ा खण्डन किया करते थे। सैंकड़ों पुरुषों का उन्होंने इस पाप पंक एवं दुर्व्यवसन की दलदल से उद्धार किया। स्वामी दयानंदजी ने महाराज जसवंत

सिंह को कहा :--

राजन्! राजा लोग सिंह समान समझे जाते हैं। स्थान-स्थान पर भटकने वाली वेश्या, कुतिया के सदृश है। वीर शार्दूल का कृपणा कुतिया पर प्रेम करना और आसक्त हो जाना सर्वथा अनुचित है। आर्य जाति की कुल-मर्यादा के विपरीत है। केसरी की कंदरा में, ऐसी कल्मष कुलषित कुक्करी के आगमन का क्या काम है?इस कुव्यसन के कारण धर्म-कर्म भ्रष्ट हो जाता है। मान-मर्यादा को बट्टा लगता हैं इस पाप-सोपान पर प्रथम पदार्पण करते ही पुनः पद-पद पर पुरुष का अधःपतन आप-ही-आप होता चला जाता है। इस दुर्व्यवसन को तिलांजलि देनी चाहिए।

नन्ही जान इस बात को जानती थी कि स्वामी दयानंदजी के उपदेश वेश्या व्यसन के विरुद्ध मोहिनी मंत्र का प्रभाव रखते हैं। यहाँ तक कि वर्षों के महाव्यसनी व्यक्ति भी उनके केवल श्रवणमात्र से सुधर जाते हैं। उसे इस बात का भी पता चल गया था कि स्वामी दयानंदजी ने उसकी तुलना कुतिया के साथ की है। इन दोनों बातों से उसके कलेजे पर साँप लौटने लगे। वह ईर्ष्या द्वेष एवं शत्रुता की ज्वाला में जलने लगी। एक दिन राव राजा जवान सिंह जी ने निवेदन किया :--

प्रभो! आप कोई सुयोग्य शिष्य तो बनाइये जिससे आपके उद्देश्यों की लड़ी बीच में न टूटने पाये।

इसका स्वामी जी ने उत्तर दिया :--

शिष्यों से मुझे कोई आशा नहीं है। ऐसा एक भी सुपात्र और सुयोग्य शिष्य मुझे नहीं मिल सका जिसके हाथ में अपने कार्य की बागडोर सौंप सकूँ। अब मेरे शिष्य सभी आर्य सामाजिक हैं। वे ही मेरे विश्वास और भरोसे के भव्य भवन हैं। उन्हीं के पुरुषार्थ पर मेरे कार्यों की पूर्ति और मनोरथों की सफलता अवलम्बित है।

जोधपुर में महर्षि दयानंदजी का प्रथम मास तो निर्विघ्न निकल गया। परन्तु 4वें मास में बाधाएँ आरम्भ हो गई। 12.9.1883 ई. को कल्लू नामक सेवक लगभग 600 रुपये, मोहरें एवं शाल लेकर खिड़की से भाग निकला। पुलिस को भी सूचित किया गया परन्तु उसका कुछ भी नहीं पता चला। 29.9.1883 ई. की रात्रि 9 बजे घौड़मिश्र (शाहपुर निवासी) नामक रसोइये ने दूध में संखिया, कांच और शक्कर मिलाकर दे दिया। स्वामी दयानंदजी दूध पीकर सो गये। थोड़ी देर के पश्चात् उदर पीड़ा के कारण जाग गये। उसी विकट व्याकुलता के कारण तीन बार उल्टी आई। स्वयं ही पानी के कुल्ले करते रहे। परन्तु किसी भी सेवक को नहीं जगाया। 30.9.1883 ई. उन्हें उठने में देरी हो गई। उठते फिर एक उल्टी आई। अब उन्हें संदेह हो गया कि उन्हें विष दिया गया हैं अधिक उल्टियाँ आने के कारण शारीरिक दुर्बलता आ गई। अतः रावराजा तेजसिंह को सूचित किया गया। इसके पश्चात् डॉ. सूरजमल बुलाये गये और उन्होंने स्वामी दयानंदजी को देखा और दवाई दे दी। बुखार तो उतर गया परन्तु पेट दर्द बना रहा। 30.9.1883 ई. को सायंकाल 4 बजे महाराजा प्रतापसिंह को स्वामी दयानंदजी की बीमारी का समाचार मिला और उसने डॉ. अलीमर्दान खां जोकि साधारण योग्यता का डॉक्टर था स्वामी दयानंदजी के इलाज के लिए भेजा। डॉ. सूरजमल के इलाज को बंद करके डॉ अलीमर्दान जैसे अयोग्य डाक्टर को स्वामी दयानंदजी के बीमार शरीर को इलाज करने के लिए छोड़ देना अक्षम्य अपराध था। यहाँ तक कि डॉ. सूरजमल ने देवेन्द्र बाबू के समक्ष स्वीकार भी किया था कि अधिक संख्या में दस्त आने एवं शरीर पर छाले पड़ जाने के कारण औषधि में अधिक कैलामेल (Calomel) नामक तत्व होना था और यह कुकर्म अलीमर्दान ने किया था। डॉ. सूरजमल इस दृष्टि से अपराधी ठहरते हैं कि उन्होंने यह जानते हुए कि इलाज में लापरवाही हो रही है न तो स्वयं हस्तक्षेप किया और न ही स्वामी दयानंदजी को सावधान किया।

इस प्रकार स्वामी दयानंदजी ने अपने विष दाता घौड़मिश्र (शाहपुर निवासी) को पकड़ लिया और उसने अपराध भी स्वीकार कर लिया। उसे 500 रुपये देकर नेपाल भाग जाने का आदेश दिया ताकि महर्षि दयानंदजी के भक्त उसे मार न डालें और इस प्रकार उन्होंने अपने हत्यारे को अद्‌भुत क्षमा प्रदान की।

1.10.1883 ई. से 16.10.1883 ई. के मध्य में स्वामी दयानंदजी की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। मुख, कण्ठ, जीभ, तालु एवं माथे पर छाले पड़ गये। पेट दर्द के साथ हिचकियां भी आने लगीं। दस्तों को रोकने के लिए स्वामी दयानंदजी दही एवं मट्‌ठा भी लेते रहे। परन्तु बीमारी में कोई भी सुधार नहीं हुआ।

स्वामी दयानंदजी की बीमारी का 12.10.1883 ई. तक जोधपुर से बाहर किसी भी व्यक्ति को पता नहीं चला, क्योंकि जोधपुर का बाहर से कोई सम्पर्क सूत्र नहीं था। बिना बतलाये किसी भी व्यक्ति को किसी भी बात का पता नहीं चल सकता। क्योंकि जानवरों की बोली समझ में नहीं आती और देवता किसी ने नहीं देखे हैं। जब राजपूताना गजट में स्वामी दयानंदजी की बीमारी का समाचार छपा और आर्यसमाज अजमेर के एक सभासद की दृष्टि इस समाचार पर पड़ी। इसके पश्चात् उसने अन्य आर्य सदस्यों को सूचित किया। अतः आर्यसमाज अजमेर का एक सभासद श्री जेठमल सोदा जोधपुर भेजा गया। उसने स्वामी दयानंदजी की शोचनीय अवस्था को देखकर कहा :--

महाराज, आपने अपने अस्वस्थ होने की सूचना हमें नहीं दी।

इस पर स्वामी दयानंदजी ने कहा :--

सोदा जी! यह तो शरीर का धर्म है। शरीर का दुःखी सुखी होना स्वाभाविक है। यदि मैं आप को अथवा अन्यों को सूचित करता तो आपको दुःख के अतिरिक्त और क्या मिलता।

जेठामल सोदा ने स्वामी दयानंदजी की बीमारी का समाचार

मुम्बई, मेरठ, लाहौर आदि आर्यसमाजों को तार द्वारा भेज दिया । इस प्रकार 16.10.1883 ई. दिन मंगलवार को जसवंतसिंह, कर्नल प्रतापसिंह एवं रावराजा तेजासिंह आदि स्वामी दयानंदजी के पास आये । जसवंत सिंह ने स्वामी जी को बीमार देखकर बहुत दुःख व्यक्त किया और शीघ्र ही स्वस्थ होने की कामना भी की । इसके अतिरिक्त वेदभाष्य के लिए 2000 रुपये और उपहार में दो रेशमी परिधान उन्हें भेंट के रूप में भी दिये । इसके पश्चात् स्वामी दयानंदजी जोधपुर से चले गये ।

इसके पश्चात् स्वामी दयानंदजी पाली में 2 दिन ठहरे और 20. 10.1883 ई. शनिवार को उन्होंने यहाँ से रेल मार्ग द्वारा आबूरोड़ के लिये प्रस्थान किया । 21.10.1993 ई. रविवार को वे आबूरोड़ स्टेशन पर उतरे । पर्वत पर चढ़ने के लिए पालकी की व्यवस्था पहले ही की जा चुकी थी । अब उन्हें पालकी में लिटा दिया गया और पर्वत पर ले जाने लगे । दो मील चढ़ने के बाद कहारों ने पालकी को एक पेड़ के नीचे सड़क के किनारे रख दिया और स्वयं आराम करने लगे । उस समय एक अद्‌भुत घटना घटी । उस समय डॉ. लक्ष्मण दास जो आबू पर्वत के सरकारी अस्पताल में कार्यरत थे । अपनी बदली का आदेश पाकर अजमेर जा रहे थे । वे घोड़े पर सवार होकर शिखर से उतर रहे थे । उन्होंने देखा कि काषाय वस्त्रधारी एक संन्यासी अर्द्धमूर्छित अवस्था में सड़क के किनारे एक पालकी में पड़े हैं । परिचय पूछने पर पता चला कि ये महर्षि दयानंदजी हैं । स्वामी दयानंदजी की ऐसी शोचनीय दशा देख कर डॉ. लक्ष्मण दास के नेत्रों में आँसू भर आये । उन्होंने तुरन्त थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् 3 बार एमोनिया की दवा दी । स्वामी दयानंदजी की मूर्छा दूर हो गयी । उन्होंने आँख खोली और कहा :--

ऐसा लगता है किसी ने मुझे अमृत पिलाया है ।

साथ के लोगों ने लक्ष्मण दास का परिचय दिया और स्वामी

दयानंदजी फिर मूर्छित हो गये। इस प्रकार रात के 8 बजे स्वामी दयानंदजी आबू पर्वत पर पहुँचे और जोधपुर के राजकीय आवास गृह में ठहराये गये। उधर डॉ. लक्ष्मण दास भी स्वामी दयानंदजी के साथ आबू पर्वत पर वापिस आ गये। उन्होंने एक औषधि तैयार करके स्वामी दयानंदजी को दी। जिससे उन्हें काफी लाभ हुआ। दस्तों में कमी आई, हिचकी रुक गई और चेतना यथापूर्व बनी रही। स्वामी दयानंदजी आबू पर्वत पर 6 दिन तक रहे। डॉ. लक्ष्मण दास को पुनः आदेश मिला कि वे शीघ्र ही अजमेर पहुँच कर अपना कार्यभार संभाले। इस के बाद उन्होंने मुख्य चिकित्सा अधिकारी से दो मास का अवैतनिक अवकाश मांगा ताकि वे स्वामी दयानंदजी की बीमारी का इलाज कर सकें। परन्तु मुख्य चिकित्सा अधिकारी डॉ. स्पेन्सर ने डॉ. लक्ष्मणदास से कहा :--

हमने तुम्हें अजमेर जाने का आदेश दिया था और तुम अभी तक यहीं हो। अजमेर के सिविल सर्जन के दो तार आ चुके हैं। जिसमें तुम्हारे द्वारा अपना नवीन कार्यभार अब तक न संभालने की सूचना दी गई है। हमने तो सोचा था कि या तो पर्वत से उतरते समय तुम किसी खड्ड में गिर पड़े हो अथवा किसी हिंसक पशु के शिकार हो गये हो।

डॉ. लक्ष्मणदास ने स्वामी दयानंदजी की शोचनीय दशा के लिए सब कुछ बता दिया और उसने कहा कि मैं स्वामी दयानंदजी का इलाज करना चाहता हूँ। या तो मुझे छुट्टी दीजिए या मेरी बदली रोक दीजिए। इस पर डॉ. स्पेसर ने आदेश दिया--

तुम अजमेर जाओ मैं तथा डॉ. गुरुचरण दास स्वामी दयानंदजी को संभाल लेंगे।

इस पर डॉ. लक्ष्मण दास ने नौकरी से त्यागपत्र देकर सेवक द्वारा मुख्य चिकित्सा अधिकारी को भेज दिया। परन्तु जब स्वामी दयानंदजी को इस बात का पता चला तो उन्होंने त्याग पत्र को ही फाड़ दिया। डॉ. लक्ष्मणदास ने दोबारा त्याग पत्र लिखकर भेजा जो मुख्य चिकित्सा

अधिकारी ने अस्वीकार कर दिया । अंततः डॉ. लक्ष्मण ने अजमेर जाने का निर्णय किया और स्वामी दयानंदजी के लिए 3 दिन की दवाई भी लिख दी थी और साथ ही निवेदन किया कि वे स्वामी दयानंदजी को लेकर अजमेर आये ताकि वहाँ पर उनका भली भाँति इलाज हो सके । सेवकों ने स्वामी दयानंदजी की सेवा सुश्रुषा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी । ठाकुर भूपाल सिंह जोकि अलीगढ़ के निवासी थे और जोधपुर से स्वामी दयानंदजी के साथ आये थे स्वामी दयानंदजी के मलमूत्र को उठाने और मल से सने हुए कपड़ों को साफ करने में संकोच नहीं किया । इसलिए आर्यसमाज भूपालसिंह का सदा कृतज्ञ रहेगा ।

आबू पर्वत से नीचे आते समय डॉ. लक्ष्मण दास को कई आर्य पुरुष ऊपर जाते मिले । उन्होंने डॉ. लक्ष्मण दास से स्वामी दयानंदजी की बीमारी के विषय में उतनी ही आतुरता से पूछा जितनी आतुरता से पाण्डु-पुत्रों ने श्रीकृष्ण का हाल ऊधवजी से पूछा था । डॉ. लक्ष्मण दास ने आँसू बहाते हुए कहा :--

भगवान् की अवस्था अतीव शोचनीय है । निर्बलता परले पार की बढ़ गई है । उनके कण्ठ में, जीभ पर, मुख में, माथे और सिर पर छाले पड़ गये हैं । पानी का घूंट भी बड़ी कठिनता से गले के नीचे उतरता है । इस महाघोर अंधकार में निपट हताशा की निशा में उदासीनता के गहरे सागर में आशा की केवल यही एक झीनी रेखा चमकती है कि महाराज की चेतना ठीक है, उनकी आत्मा स्वस्थ है । हाय ! मैं क्या करूं ?पराधीन हूँ, विवश हूँ । ऐसे समय में अकिंचित्कार हो गया हूँ । परन्तु पीछे महाराज के लिए औषधादि लिख आया हूँ ।

इस प्रकार 26.10.1883 ई. शुक्रवार को स्वामी दयानंदजी को अजमेर के लिए ले जाया गया । आबूरोड़ से उन्हें प्रथम श्रेणी के डिब्बे में लिटा दिया गया । इस प्रकार जब रेलगाड़ी सायं 4 बजे रेलवे स्टेशन पर पहुँची तो स्वामी दयानंदजी प्रायः मूर्छित अवस्था में थे । चार व्यक्तियों ने उन्हें डिब्बे से उतारा और पालकी में लिटा कर भिनाय

राजा की कोठी पर ले जाकर चारपाई पर सुला दिया । डॉ. लक्ष्मण दास को समाचार दे दिया और 27.10.1883 ई. को उन्होंने फिर स्वामी दयानंदजी की बीमारी का इलाज आरंभ कर दिया । उन्होंने स्वामी दयानंदजी की स्थिति को देखकर कह दिया किसी कुपथ्य के कारण निमोनिये का स्वामी दयानंदजी पर आक्रमण हुआ है ।

जीवन संध्या को निकट आता जानकर स्वामी दयानंदजी ने अपनी वसीयत की प्रतियाँ उपस्थित आर्यों में बंटवाई । इसके उपरांत डॉ. लक्ष्मण को अपने इलाज के लिये इनाम देना चाहा । स्वामी दयानंदजी की यह कृतज्ञता देखकर डॉ. लक्ष्मणदास की आँखों में बरसात की झड़ी लग गई और उन्होंने कहा :--

महाराज, यदि मेरे पास धन होता तो मैं आपके एक-एक रोम पर उसे न्योछावार कर देता । मुझे कोई पुरस्कार नहीं चाहिए । यदि मैं अपने प्राण देकर भी आपको स्वस्थ कर पाता, तो यही मेरा सब से बड़ा पुरस्कार होता ।

30.10.1883 ई. दिन मंगलवार स्वामी दयानंदजी का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया तो उन्होंने स्वयं कह दिया :--

यह मेरा अंत समय है, अतः उपचार छोड़ दो ।

इसके बाद अंग्रेज़ सिविल सर्जन डॉ. न्यूमैन को बुलाया गया । उसने आश्चर्यचकित होकर रोग के विषय में कहा :--

ये बड़े साहसिक और सहनशील हैं । इनकी नस-नस और रोम-रोम में रोग का विषैला कीड़ा घुसकर कुलबुलाहट कर रहा है परन्तु ये प्रशांत चित्त हैं । इनके तन पिंजर में महाव्याधिनी ज्वालाजलन जलाये चली जाती है जिसे दूर से देखते ही कँपकँपी छूटने लगती है । पर ये हैं कि चुपचाप चारपाई पर पड़े हैं । हिलते-डुलते तक नहीं । ऐसे रोग में जीते रहना इन्हीं का काम है ।

इसके अतिरिक्त उसी दिन एक मुसलमान वैद्य पीर जी भी

स्वामी दयांनदजी को देखने आये थे और उन्होंने दांतों में उँगली दबाते हुए कहा :--

धैर्य का ऐसा धनी, धरणी तल पर हमने दूसरा नहीं देखा ।

इस प्रकार सायंकाल के 4 बज गये । स्वामी दयानंदजी ने नाई को बुलाकर हजामत करने को कहा । परन्तु भक्तों ने निवेदन किया कि उस्तरा न फिराये । छाले-फुंसिंया कट कर रक्त बहने लगेगा । परन्तु उन्होंने उत्तर दिया । इसकी कोई चिंता नहीं । हजामत करवा कर उन्होंने नाखून भी कटवाये । फिर गीले तौलिये से सिर को पोंछकर सिरहाने के सहारे चारपाई पर बैठ गये ।

इस प्रकार साढ़े चार बजे स्वामी दयानंदजी ने सब दरवाजे खुलवा दिये । गुरुदत्त, जीवनदास आदि सब भक्तों को अपनी पीठ के पीछे खड़े होने का आदेश दिया । इसका भाव था मेरे बाद मेरे आदेशें का पालन करो । फिर सायंकाल 6 बजे पूछा आज कौन सा पक्ष, वार एवं तिथि है । फिर टकटकी लगाये निर्निमेष नेत्रों से भक्तों की ओर देखते रहे । इसके पश्चात् वेदमंत्रों का पाठ करने लगे फिर अपने सर्वप्रिय मंत्र ''विश्वानिदेव'' बहुत बार उच्चारण किया । कुछ समय क ि ल ए समाधिस्थ हो गये । फिर आंखें खोलकर अंतिम शब्द कहे :--

हे दयामय सर्वशक्तिमान परमेश्वर, तेरी यही इच्छा है । तेरी यही इच्छा है । तेरी इच्छा पूर्ण हो । अहा ! तूने अच्छी लीला की ।

महर्षि दयानंद की मृत्यु के पश्चात् भक्तों ने अनाथ बालकों की भाँति रो-रो कर कमरे की भूमि को भिगो दिया । फूट-फूट कर रोते उनकी आँखें फूल गई घिग्घियां बंध गई । जिस प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के वियोग में भरत जी व्याकुल हो उठे थे एवं योगिराजश्रीकृष्ण निर्वाण पर ऊध्वजी व पाण्डवों ने करुण-क्रंदन किया था, उसी प्रकार महर्षि दयानंद के अकस्मात् निधन पर आर्य समाजियों में निरंतर आर्त्तनाद लगा । उनकी प्रगति के बालरवि को

राहु ने सहज ग्रस लिया। प्रसन्नता पर खिन्नता की झलक पड़ गई। चारु प्रेम प्रतिमा अकाल ही सामने से उठा ली गई। भक्त जन बच्चों की भाँति बिलख-बिलख कर रोने लगे। एक हिन्दी कवि के शब्दों में :--

सूर्य सोने चल दिया लेकिन सितारों को जगाकर,
एक दीपक बुझ गया, लाखों चिराग़ों को जलाकर,
कह रहे बलिदानी प्रेमी आज दीपावली को जलाकर,
आज कोई मर गया, लेकिन हमें मरना सिखाकर।।

महर्षि दयानंदजी के महाप्रस्थान पर एक उर्दूशायर ने भी लिखा है :--

मरने वाले के होठों पे तबस्सुम की झलक,
मौत ने वस्ल का पैग़ाम दिया है जैसे,
पता नहीं यह मौत थी या यार का पैग़ाम था।

21. महर्षि दयानंद का अंत्येष्टि संस्कार

महर्षि दयानंद के निधनोपरांत 31.10.1883 ई. बुधवार को उनके अंत्येष्टि संस्कार की तैयारियां आरम्भ हो गई। उनके पार्थिक शरीर को स्नान कर चन्दनादि द्रव्यों से चर्चित किया गया। इसके बाद काठ का एक विमान तैयार करके उसे लता, पल्लवों व पुष्पों से सुसज्जित किया गया। फिर उनके शरीर को इस विमान पर स्थापित कर दिया गया। उनके शरीर को घेर कर आर्यभक्त खड़े हो गये और आधा घण्टा तक वेदमंत्रों का पाठ करते रहे। इसके बाद आर्यभक्त पार्थिव शरीर को कंधों पर उठाकर चल पड़े। स्वामी दयानंदजी की यह अंतिम यात्रा भिनाय कोठी से शुरू हुई। लगभग दिन के 10 बजे अर्थी उठाई गई। उस समय सैकड़ों सज्जन नंगे पाँव उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। इसके आगे स्वामी दयानंदजी के संन्यासी शिष्य स्वामी आत्मानंद, गोपालगिरि एवं ब्रह्मचारी रामनंद वेदमंत्रों का पाठ कर रहे थे। स्वामी दयानंदजी की महायात्रा अजमेर के आगरा दरवाजा धानमण्डी, दरगाह बाज़ार, डिग्गी बाज़ार उषनी दरवाजे से होती हुई नगर के दक्षिण पार्श्ववर्ती मलूसर नामक श्मशान में जाकर समाप्त हुई। स्वामी आत्मानंद और ब्रह्मचारी रामानंद ने स्वामी दयानंदजी की चिता में अग्नि प्रवेश कराया। इस प्रकार स्वामी दयानंदजी द्वारा लिखित स्वीकारपत्र (वसीयत) के अनुसार ही उसका दाह-संस्कार कर दिया गया। स्वामी दयानंदजी की अस्थियों को चयन करके शाहपुराधीन के दिये बाग़ में गाड़ दिया गया।

———

अन्ततः इतना ही कहना काफी होगा कि इस संसार में अनेक महान् पुरुषों ने जन्म लिया और अनेक कल्याणकारी व महान् कार्य किये। परन्तु किसी में कोई गुण तो किसी में कोई और अन्य गुण, जैसेकि यदि कोई विद्वान् है तो प्रभुभक्त नहीं और प्रभुभक्त है तो योगी नहीं, यदि योगी है तो समाज सुधारक नहीं, यदि अखण्ड ब्रह्मचारी है तो संन्यासी नहीं, यदि अच्छा वक्ता है तो लेखक नहीं, यदि लेखक है तो सदाचारी नहीं, यदि परोपकारी है तो कर्मठ नहीं, यदि कर्मठ है तो त्यागी नहीं, यदि त्यागी है तो देशभक्त नहीं, देशभक्त है तो योद्धा नहीं, यदि योद्धा है तो शुद्ध आहारी नहीं, यदि शुद्ध आहारी है तो बलिष्ठ नहीं, यदि बलिष्ठ है तो सुन्दर नहीं, यदि सुन्दर है तो सरल नहीं, यदि सरल है तो दयालु नहीं, यदि दयालु है तो संयमी नहीं, यदि संयमी है तो उदार नहीं।

इस प्रकार यदि हम निष्पक्ष होकर विचार करें तो उपरोक्त ये सभी गुण अकेले महर्षि दयानंदजी में दृष्टिगोचर होते हैं। वस्तुतः महर्षि दयानंदजी का चरित्र गुणों की खान है। अतः एक उर्दूशायर के शब्दों में :--

होते हैं कुछ लोग जो इतिहास सुनाया करते हैं,
कमी नहीं है उनकी जो इतिहास चुराया करते है।
पर नभ झुकता उनके आगे धरा गीत उन्हीं के गाती,
अपने पावन कर्मों से जो इतिहास बनाया करते हैं।।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेर-ओ-शायरी

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक महाभारत
4. वैदिक गीता
5. अमर धर्मग्रंथ
6. अमर नीतिग्रंथ
7. पुराणपरिचय
8. ईश्वरसिद्धि
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी
10. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
11. महावीर हनुमान
12. योगिराज श्रीकृष्ण
13. आदिशंकराचार्य
14. आचार्य चाणक्य
15. दस गुरु
16. आर्यसमाज के महामानव
17. स्वामी रामतीर्थ
18. संस्कार
19. गीतांजलि
20. आर्यसमाज
21. ओ३म्
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. यज्ञ
25. संत
26. संतवाणी
27. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
28. **Great Thoughts**
29. **General English (Part I to V)**
    (For All Classes)